ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क—40.00
एक प्रति—12.50
आजीवन सदस्यता शुल्क
800.00

विषय-सूची

कविता	लेखक	पृष्ठ
तू तो राम सुमिर जग लड़ने दे	सद्गुरु कबीर	1
सद्गुरु अभिलाष साहब	डॉ. अमरनाथ सिंह	28
आत्म-निवेदन	डॉ. वशिष्ठ तिवारी	36
साँच बराबर तप नहीं	हीरेन्द्र दास	48

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 — व्यवहार वीथी / 15 — परमार्थ पथ / 20
बीजक चिंतन / 26 — शंका समाधान / 29

लेख

महादान	श्रीमती विद्या साहू	5
हिन्दू कहौं तो मैं नहीं	श्री धर्मदास	9
मानव का मानव बनना	डॉ. रणजीत सिंह	18
हम किसी से कम नहीं	गुरुवेन्द्र दास	22
ज्ञान को जियें	विवेक दास	31
लाओत्जे क्या कहते हैं?		34
धन बनाम धर्म		37
आध्यात्मिक उन्नति और ध्यान		45

उपन्यास अंश

संत कबीर	श्री भावसिंह हिरवानी	42

निवेदन

1. पारख प्रकाश के सभी ग्राहकों से निवेदन है कि वे अपने ग्राहक नं. के साथ अपना मोबाइल नं. अवश्य दर्ज करवा दें जिससे शुल्क प्राप्ति, शुल्क समाप्ति तथा पत्रिका भेजने की सूचना आपको आपके मोबाइल नं. पर भेजी जा सके।

2. विभिन्न प्रदेशों में अनेक नये जिले बन जाने के कारण कई ग्राहकों को समय पर पारख प्रकाश नहीं मिल पा रहा है। जिन ग्राहकों के जिले बदल गये हैं वे अपने ग्राहक नं. के साथ नये जिले का नाम पिन कोड सहित अवश्य सूचित करें, ताकि आपके पते पर आपके नये जिले का नाम दर्ज किया जा सके, जिससे आपको समय पर पारख प्रकाश मिलने में सुविधा हो।

वर्ष 44 अप्रैल-मई-जून अंक 4
2015

कबीर संस्थान प्रकाशन

सद्गुरु श्री कबीर साहेब कृत
बीजक मूल (छोटा)
बीजक मूल (बड़ा)
कबीर भजनावली (भाग-1)
कबीर भजनावली (भाग-2)
कबीर साखी

~~*श्री निर्भय साहेब कृत*~~
न्यायनामा

सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब कृत
विवेक प्रकाश मूल
बोधसार मूल
रहनि प्रबोधिनी मूल

श्री निर्बंध साहेब कृत
भजन प्रवेशिका

सद्गुरु श्री विशाल साहेब कृत
विशाल वचनामृत

सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब कृत
बीजक टीका (अजिल्द)
बीजक व्याख्या : प्रथम खण्ड
बीजक व्याख्या : द्वितीय खण्ड
बीजक प्रवचन
कबीर बीजक शिक्षा
संत कबीर और उनके उपदेश
कहत कबीर
कबीर दर्शन
कबीर : जीवन और दर्शन
कबीर का सच्चा रास्ता
कबीर की उलटवांसियां
कबीर अमृतवाणी सटीक
कबीर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व
कबीर पर शुक्ल और मेरी दृष्टि
कबीर कौन?
कबीर सन्देश
कबीर का प्रेम
कबीर साहेब
कबीर का पारख सिद्धांत
कबीर परिचय सटीक
पंचग्रंथी सटीक
विवेक प्रकाश सटीक
बोधसार सटीक
रहनि प्रबोधिनी सटीक
गुरुपारख बोध सटीक
मुक्तिद्वार सटीक
रामायण रहस्य
वेद क्या कहते हैं?
बुद्ध क्या कहते हैं ? (भाष्य)
मानसमणि
तुलसी पंचामृत
उपनिषद् सौरभ
योगदर्शन
गीतासार
वैदिक राष्ट्रीयता
श्री कृष्ण और गीता
मोक्ष शास्त्र
कल्याणपथ
ब्रह्मचर्य जीवन
बूंद बूंद अमृत
सब सुख तेरे पास
बसै आनंद अटारी
छाड़हु मन विस्तारा
घूंघट के पट खोल
हंसा सुधि करु अपनो देश
उड़ि चलो हंसा अमरलोक को
समुद्र समाना बुंद में
मेरी और ह्वेन सां की डायरी
बंदे करि ले आप निबेरा
शाश्वत जीवन
सहज समाधि
ज्ञान चौंतीसा
सपने सोया मानवा
ढाई आखर
धर्म को डुबाने वाला कौन?
समझे की गति एक है
धर्म और मजहब
जीवन का सच्चा आनंद
प्रश्नोत्तरी
पत्रावली
संसार के महापुरुष
फुले और पेरियार
व्यवहार की कला
स्त्री बाल शिक्षा
आप किधर जा रहे हैं?
स्वर्ग और मोक्ष
ऐसी करनी कर चलो
ये भ्रम भूत सकल जग खाया
सरल शिक्षा
जगन्मीमांसा
बुद्धि विनोद
हृदय के गीत
वैराग्य संजीवनी
भजनावली
आदेश प्रभा
राम से कबीर
अनंत की ओर
कबीरपंथी जीवनचर्या
अहिंसा शुद्धाहार
हितोपदेश समाधान
मैं कौन हूं?
ब्राह्मण कौन?
नास्तिक कौन?
श्री कृष्ण कौन?
संत कौन?
हिन्दू कौन?
जीवन क्या है?
ध्यान क्या है?
योग क्या है?
पारख समाधि क्या है?
ईश्वर क्या है?
अद्वैत क्या है?
जागत नींद न कीजै
सरल बोध
श्री राम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक
सत्यनिष्ठा (सटीक)
कबीर अमृत वाणी (बड़ी)
बुद्ध क्या कहते हैं? (सटीक)
गृहस्थ धर्म
कबीर खड़ा बजार में
सत्य की खोज
स्वभाव का सुधार
भूला लोग कहैं घर मेरा
ऊंची घाटी राम को
शंकराचार्य क्या कहते हैं?
न्यायनामा (सटीक)
भवयान (सटीक)
विष्णु और वैष्णव कौन?
निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर
लाओत्ज़े क्या कहते हैं?
राम नाम भजु लागू तीर
आत्मसंयम ही राम भजन है
आत्मधन की परख
वैराग्य त्रिवेणी
अष्टावक्र गीता
सुख सागर भीतर है
मन की पीड़ा से मुक्ति
अमृत कहाँ है?
तेरा साहेब है घट भीतर
महाभारत मीमांसा
धनी धर्म साहेब के अमृत उपदेश

मराठी अनुवाद
बीजक टीका

ENGLISH TRANSLATION
Kabir Bijak (Commentary)
Eternal Life
Art of Human Behaviour
Who am I?
What is Life?
Kabir Amritvani
The Bijak of Kabir (In Verses)
Kabir Bijak
(Elucidation Sakhi Chapter)
Saint Kabir and his Teachings
Life and Philosophy of Kabir

गुजराती अनुवाद
बीजक मूल
बीजक व्याख्या : भाग-1
बीजक व्याख्या : भाग-2
कबीर अमृतवाणी
अढ़ी अक्षर प्रेम ना
व्यवहार नी कला
गुरु पारख बोध
स्त्री बाल शिक्षा
शाश्वत जीवन
ध्यान शुं छे?
हूं कोण छूं?
धर्म ने डुबारनार कोण?
जीवन शुं छे?
ईश्वर शुं छे?
कबीर सन्देश
श्री कृष्ण अने गीता
कबीर नो सांचो प्रेम
गुरुवंदना
संत कबीर अने अेमना उपदेश
कबीर : जीवन अने दर्शन

संत श्री धर्मेन्द्र साहेब कृत
कबीर के ज्वलंत रूप
सार सार को गहि रहे
सद्गुरु कबीर और पारख सिद्धांत
पूजिय विप्र शील गुण हीना
सबकी मांगे खैर
सुखी जीवन की कला
बूंद बूंद से घट भरे
सांचा शब्द कबीर का
सुखी जीवन का रहस्य
कबीर बीजक के रत्न

गुजराती अनुवाद
सुखी जीवन नी कला
सद्गुरु कबीर अने पारख सिद्धांत

संत श्री अशोक साहेब कृत
पानी में मीन पियासी
धनी कौन?
बोध कथाएं
ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया

श्री भावसिंह हिरवानी कृत
कबीर (नाटक)
प्रेरक कहानियां
काया कल्प
समर्पण
बाल कहानियां
ना घर तेरा ना घर मेरा
जीवन का सच

कबीर पारख संस्थान, संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद-211011

सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
—सन्त कबीर

अमरापुर को जात हौं, सबसों कहौं पुकार।
आवन होय सो आइयो, सूरी ऊपर यार॥ कबीर साखी॥

वर्ष 44] इलाहाबाद, वैसाख, वि० सं० 2072, अप्रैल 2015, सत्कबीराब्द 616 [अंक 4

तू तो राम सुमिर जग लड़ने दे॥ टेक॥

कोरा कागज काली स्याही, लिखत पढ़त वहि पढ़ने दे॥ 1॥
हाथी चलत अपनी गति में, कुकुर भुकै तो भुकने दे॥ 2॥
चण्डी भैरव सीतला देवी, देव पुजै तो पुजने दे॥ 3॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, नरक परै वहि परने दे॥ 4॥

× × ×

जो तू भक्ति करन को चाहत हो, निन्दा से नहिं डरिहो जी॥ 1॥
पाँच छड़ी कोई सिर पर मारे, सहत बने तो सहिहो जी॥ 2॥
मूरख आगे ग्यान न कथियो, मौनी होके रहिहो जी॥ 3॥
पर तिरिया से नेह न करिहो, देखत दूरि से डरिहो जी॥ 4॥
यह संसार विषय के काँटा, निरखि परखि पगु धरिहो जी॥ 5॥
कहैं कबीर यह निर्गुन बानी, महरम होके बुझिहो जी॥ 6॥

पारख प्रकाश

गुरु चरणन चित लाइये

दुनिया का हर प्राणी सुखाभिलाषी है, फिर मनुष्य का तो कहना ही क्या! वह तो हर समय सुख की तलाश में रहता है, परंतु उसे कहीं भी ऐसा सुख नहीं मिलता जो स्थायी हो और जिसे प्राप्तकर वह तृप्त हो जाये। इसका मुख्य कारण यह है कि वह उन प्राणी-पदार्थों के संग्रह-उपभोग में स्थायी सुख खोजता है जो स्वयं परिवर्तनशील एवं नश्वर हैं। प्राणी-पदार्थों का संग्रह-उपभोग इंद्रियों को चंचल-उत्तेजित करने वाले हैं और इंद्रियों की चंचलता-उत्तेजना से मिलने वाला सुख क्षणिक एवं नश्वर तो होगा ही, तृष्णा-वासना की वृद्धि करने वाला और परिणाम में दुखदायी भी होगा। सदा रहने वाला, एकरस और प्रसन्नतादायक सुख तो आत्मसंयम से मिलेगा। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—सदा रहे सुख संयम अपने।

एकरस, तृप्तिदायक एवं पूर्ण सुख का उपाय बताते हुए सद्गुरु कबीर कहते हैं—

यह दुनिया दो रोज की, मत कर यासो हेत।
गुरु चरणन चित लाइये, जो पूरण सुख देत॥

यह दुनिया दो दिनों की है, इसलिए इससे मोह मत करो, किन्तु दुनिया से मन हटाकर गुरु के चरणों में मन लगाओ, जो पूर्ण सुख, सब प्रकार का सुख देने वाला है।

ऊपर जो कहा गया है कि दुनिया दो दिनों की है तो यह कहने का एक तरीका है। वस्तुतः दुनिया दो दिनों की नहीं है, वह तो नित्य अनादि और अनंत है। दुनिया का और हमारा संबंध दो दिनों का अर्थात अल्पकालीन है। इसलिए दुनिया से मोह न कर दुनिया की सेवा करें। दुनिया मोह करने की जगह नहीं किन्तु सेवा करते हुए आत्मकल्याण करने की जगह है।

इस उलझन में पड़ने की जरूरत नहीं है कि दुनिया कैसे बनी और किसने किससे बनायी। क्योंकि इतना तो साफ है कि हमारे जन्म लेने के पहले दुनिया थी और हमारे न रहने पर भी दुनिया रहेगी। हमें तो यह सोचना है कि दुनिया में रहते हुए सुख से कैसे रहें और दुनिया से छुटकारा कैसे हो।

परिवर्तित होते हुए भी दुनिया नित्य है, क्योंकि द्रव्य नित्य है तो दुनिया भी नित्य है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि दुनिया में जितने भी तत्त्व है उनमें से एक कण का भी सर्वथा विनाश नहीं होगा, केवल उसका बाहरी रूप ही परिवर्तित होगा और एक भी नये कण का निर्माण नहीं होगा। जिसे हम निर्माण-विनाश, बनना-बिगड़ना कहते हैं वह तत्त्वों का केवल संयोग-वियोग और बाहरी रूप का परिवर्तन होना है। तत्त्वों के मूल रूप में और गुण-धर्म में परिवर्तन नहीं होता।

यदि दुनिया कभी नहीं थी, किसी कालखंड में बनी तो यह कहां से आ गयी और किससे बनी? जिससे दुनिया बनी वह पहले कहां था और कभी दुनिया नहीं रहेगी तो कहां चली जायेगी? न तो शून्य से कुछ बनता है और न जो है वह मिटकर शून्य हो जायेगा। गीता में भी कहा गया है—नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। अर्थात न तो असत (शून्य) की सत्ता होती है और न सत्य का अभाव (विनाश) होता है।

जो लोग यह मानते हैं कि दुनिया कभी नहीं थी और बाद में यह अस्तित्व में आयी उनसे प्रश्न करते हुए ऋग्वेद के ऋषि कहते हैं—

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत्॥
(ऋग्वेद 1-164-4)

अर्थात पहले उत्पन्न होते हुए को किसने देखा! जो यह हड्डी वाला स्थूल जगत है उसे हड्डी रहित सूक्ष्म प्रकृति ने धारण कर रखा है। भूमि अर्थात जड़ तत्त्वों से स्थूल और सूक्ष्म शरीर बन गया, किन्तु आत्मा क्या है यह किससे बना—यह पूछने-जानने के लिए विद्वानों-तत्त्वज्ञानियों के पास कौन जायेगा?

इस मंत्र में ऋषि एक साथ कई महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डालते हैं और प्रश्न करते हैं। उनका पहला प्रश्न है कि दुनिया नहीं थी और बाद में बनी तो उसे उत्पन्न

होते किसने देखा? जिसने देखा वह कहां ठहरकर देखा? इसी पर कबीरपंथ के महान क्रांतिकारी संत श्री गुरुदयाल साहेब कहते हैं—

कबीर दुनिया न हती, तब रहा एक भगवान।
जिन यह देखा नजर भर, सो रहा कौन मकान॥

ऋषि दूसरी बात कहते हैं कि यह जो दिखाई पड़ने वाला स्थूल जगत है उसे सूक्ष्म प्रकृति ने धारण कर रखा है। अर्थात दिखाई पड़ने वाला स्थूल जगत सच नहीं है, परिवर्तनशील है, सच तो सूक्ष्म प्रकृति है जो दिखाई नहीं पड़ती है। जिसे देखकर हम मोहित, लुब्ध और आकर्षित होते हैं वह तो परिवर्तनशील है, आज है कल नहीं रहेगा, फिर किसके लिए लोभ-मोह और किसके लिए पाप?

महर्षि कपिल ने हजारों वर्षों पूर्व यही बात कही थी—

गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति।
यत्तु दृष्टिपथं प्राप्तं तन्मायेव सुतुच्छकम्॥

अर्थात प्रकृति का जो सूक्ष्म रूप है वह दिखाई नहीं पड़ता और जो देखने में आता है वह माया के समान अत्यंत तुच्छ है।

ऋषि तीसरी बात कहते हैं कि भूमि अर्थात जड़ प्रकृति से असु और असृक—प्राण और रक्त अर्थात सूक्ष्म और स्थूल शरीर पैदा हो गये, क्योंकि प्रकृति भी जड़ और सूक्ष्म एवं स्थूल शरीर भी जड़। जड़ तत्त्वों से जड़ पदार्थ तो बन सकते हैं किंतु आत्मा क्या है, यह कहां से आ गया, यह पूछने के लिए विद्वानों के पास कौन जायेगा? यहां ऋषि का कथन है कि जड़ तत्त्वों से जड़ पदार्थ तो बन सकते हैं किंतु उससे आत्मा नहीं बन सकती, क्योंकि वह चेतन है।

सीधी-सी बात है कि दुनिया अनादि-अनंत है। न तो यह कभी बनी है और न इसका विनाश होकर सब कुछ शून्य हो जायेगा। परिवर्तित होते हुए भी दुनिया नित्य रहेगी, किन्तु इसका-हमारा संबंध नित्य नहीं रहेगा। सारा संबंध अल्पकालीन है। इस अल्पकालीन संबंध में राग-द्वेष, मोह-वैर कर लेना, कहीं आसक्त हो जाना दुख का कारण है। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—यह दुनिया दो रोज की, मत कर यासो हेत। यह दुनिया दो दिनों की है, इससे मोह मत करो। दुनिया दुखदायी नहीं है, दुनिया का मोह दुखदायी है। मोह ही भवसागर, भवबंधन तथा गले की फांसी है। मोह का त्याग करके ही आत्मकल्याण तथा लोकसेवा का काम अच्छी तरह से किया जा सकता है। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—

झूठ झूठा कै डारहू, मिथ्या यह संसार।
तेहि कारण मैं कहत हौं, जाते होय उबार॥

यह संसार मिथ्या है, इसलिए इसे झूठा समझकर इसका त्याग कर दो। संसार को मैं मिथ्या एवं झूठा इसलिए कह रहा हूं, जिससे तुम इसका मोह छोड़ सको और इससे तुम्हारा उद्धार हो जाये।

ध्यान दें, सद्गुरु कबीर का संसार को मिथ्या कहने का अर्थ यह नहीं है कि संसार का अस्तित्व है ही नहीं, जैसा कि अद्वैत वेदांती मानते हैं। अद्वैत वेदांती कहते हैं कि आकाश-कुसुम, बंध्या-पुत्र, कमठ-रोम के समान यह संसार न था, न है और न होगा। यह सर्वथा मिथ्या है, तीनों काल में इसका अस्तित्व है ही नहीं। यह तो केवल भ्रम से प्रतीत होता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं संसार तो प्रवहमान सदाकाल से है और सदाकाल रहेगा। यह वंध्या-पुत्र के समान मिथ्या नहीं है। मैं इसे मिथ्या इसलिए कह रहा हूं कि तुम इसे मिथ्या समझकर इसका मोह त्याग सको और इससे तुम्हारा उद्धार हो जाये। क्योंकि एक दिन न तुम इस संसार में रह जाओगे और न वे प्राणी-पदार्थ संसार में रह जायेंगे जिनके लोभ-मोह में पड़कर तुम दुखी हो रहे हो। यहां सब कुछ तो परिवर्तनशील एवं विनश्वर है। संसार में ऐसा स्थिर-स्थायी पदार्थ क्या है जो बदलने एवं विनशने वाला न हो। यदि कुछ स्थायी होता और उसका हमारा संबंध सदा बना रहता तब तो मोह करना सार्थक होता किन्तु जब कुछ स्थिर-स्थायी है नहीं तब किससे मोह करके अपने को दुख के गड्ढे में डाला जाये।

भौतिक ऐश्वर्यों का मोह, संसार के गूढ़ रहस्यों, कण-कण को जानने का मोह, समर्पित तथा अपना कहे जाने वालों का मोह तथा विद्या का मोह एवं अहंकार—

यही तो आदमी के भटकने एवं दुख का कारण है। ऋग्वेद के ऋषि कहते हैं—

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम्।
अन्यस्य चित्तमभि सञ्चरेण्यमुताधीतं वि नश्यति॥

(ऋग्वेद 1-170-1)

अर्थात न आज कुछ है और न कल कुछ रहेगा, जो अद्भुत है उसे कौन जान सकता है? अन्य लोगों का मन चंचल-बदलने वाला है और जो अच्छी तरह से पढ़ लिया गया है, याद कर लिया गया है, वह भी भूल जाता है।

सारी भौतिक उपलब्धियां चलविचल हैं, आज हैं कल नहीं रहेंगी, फिर किसका मोह और किसका अहंकार किया जाये। संसार के सारे रहस्यों को जानने का मोह भी मिथ्या है। संसार के सारे रहस्यों को कौन जान सका है, फिर उसके लिए बहुत माथापच्ची करने की क्या आवश्यकता है। दुनिया का खास रहस्य यह है कि इसमें सर्वत्र कारण-कार्य की व्यवस्था है। बिना कारण के कोई कार्य नहीं हो सकता। यदि हमारे जीवन में कोई दुख है तो उसका कोई-न-कोई कारण अवश्य है और वह कारण है मोह एवं आसक्ति। इस मोह एवं आसक्ति को छोड़ देने पर कोई मानसिक दुख नहीं रह जायेगा। जिन्हें हम अपना कहते हैं, समर्पित तथा अनुगामी मानते हैं उनका भी मन कब बदल जाये और उनमें से कब कौन विरोधी तथा प्रतिकूल हो जाये क्या ठिकाना! फिर विद्या का अहंकार कि मैं बहुत पढ़ा-लिखा, बहुत जानने वाला हूं, मिथ्या ही है। क्योंकि एक दिन ऐसा आता है कि अच्छी तरह याद किया हुआ भी भूल जाता है। इसलिए सबका मोह एवं अहंकार त्यागकर प्राप्त शक्ति-योग्यता का उपयोग आत्मकल्याण तथा लोकसेवा के लिए करना ही श्रेयष्कर एवं सुखद है।

जिस दिन हमारी आंखें सदा के लिए बंद हो जायेंगी, यहां से विदा होना होगा उस दिन कौन और क्या साथ जायेगा! जीवन रहते-रहते ही कितनों का संग-साथ सदा के लिए छुट जाता है। प्रिय माने गये लोग विमुख हो जाते हैं तथा चीजें विनष्ट हो जाती हैं— तब किससे मोह किया जाये। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—

दुनिया का और तुम्हारा संबंध बहुत थोड़े दिनों का है, इसलिए इससे मोह न कर, गुरु के चरणों में मन लगाओ, जो पूर्ण सुख देने वाला है। प्रश्न हो सकता है कि गुरु के चरण भी तो दुनिया के अंदर होने से विनश्वर हैं, फिर उससे प्रेम करने से स्थायी और पूर्ण सुख कैसे मिलेगा?

यहां गुरुचरण का अभिधा नहीं, किंतु लक्षणा अर्थ है। यहां गुरु के स्थूल चरण का अर्थ नहीं है, किंतु गुरु चरण का भाव है गुरु-ज्ञान। गुरु का स्थूल चरण हड्डी, मांस, चाम से निर्मित होने से उससे पूर्ण सुख कैसे मिलेगा। व्यवहार में शिष्टाचार, अभिवादन, प्रणाम करते समय गुरु का चरण-स्पर्श किया जाता है। यह विनम्रता का प्रतीक है और आदर-सम्मान के लिए यह आवश्यक है। परंतु यदि कोई रोज गुरु का चरण-स्पर्श तो करता है, बाह्य रूप से गुरु की पूजा-आरती करता है, गुरु के सामने बहुत विनम्रता से व्यवहार करता है, लेकिन गुरु-ज्ञान की उपेक्षा करता है, जीवन में उसका प्रयोग नहीं करता तो उसका गुरु का चरण-स्पर्श करना, पूजा-आरती करना केवल दिखावा है।

'गुरु चरणन चित लाइये' का अर्थ है गुरु-ज्ञान गुरोपदेश में मन लगाना, उसका चिंतन-मनन करना, उसके अनुसार जीवन व्यवहार करना। कोई गुरु के बाहरी रूप-सौन्दर्य, शारीरिक व्यक्तित्व को देखकर तो गुरु की भक्ति नहीं करता, किंतु भक्ति करता है गुरु के ज्ञान-वैराग्य, त्याग-तप, निर्मल साधु रहनी को देखकर। गुरुभक्ति का अर्थ है गुरु का ज्ञान-वैराग्य, त्याग-तप धीरे-धीरे अपने जीवन में उतरते जाना। और जिसका मन ज्ञान-वैराग्य, त्याग-तप के चिंतन-मनन में लीन रहता है तथा जीवन-आचरण ज्ञान-वैराग्य, त्याग-तप से पूर्ण रहता है निश्चित है उसे पूर्ण सुख, स्थायी शाश्वत सुख की प्राप्ति होगी ही।

जैसे सबका शरीर क्षणभंगुर और मरणधर्मा है तथा हड्डी-मांस का ढांचा है वैसे ही गुरु का शरीर भी है।

कोई गुरु के ज्ञान-वैराग्य, तप-त्याग, साधु रहनी से प्रेरणा न लेकर उनके शरीर में ही मोह कर लिया, उसी को पकड़कर बैठ गया और उनका शरीर न रहने पर उनकी मूर्ति-समाधि बनाकर या उनके द्वारा प्रयोग में लायी गयी वस्तुओं की ही पूजा-आरती करने लग गया तो उसने गुरु-भक्ति का अर्थ समझा ही नहीं। गुरु-भक्ति के नाम पर भटककर वह फिर दुनयवी मोह में पड़ गया। भक्ति के नाम पर वह केवल दिखावा ही करता रह गया। इससे उसे क्षणिक संतोष भले मिल जाये, किंतु मन की जलन, अविद्या, आसक्ति दूर होकर उसे शाश्वत सुख, पूर्ण सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। पूर्ण सुख की प्राप्ति तो गुरु-ज्ञान का आचरण करने से, त्याग-वैराग्यपूर्ण जीवन जीने से होगी। पूर्ण सुख का अर्थ है मन का सब समय भरा-भरा प्रसन्न रहना, आत्मतृप्त, आत्म-संतुष्ट रहना।

गुरु चरण में चित्त लगाने का अर्थ है मन का निर्मोह, निष्काम और अनासक्त हो जाना। निर्मोह, निष्काम, अनासक्त मन में कोई दुख, पीड़ा, संताप नहीं रह जाता। यही सब सुख, पूर्ण सुख की प्राप्ति है। गुरु-ज्ञान, गुरु-भक्ति का फल ही है निर्मोह, निष्काम, अनासक्त होना। गुरु का जो पंचभौतिक स्थूल शरीर है उसके द्वारा ही ज्ञान मिलता है, निर्मल जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है इसलिए गुरु की स्थूल सेवा की भी आवश्यकता है, परंतु कोई गुरु के शरीर की स्थूल सेवा के लिए गुरु-शरण में नहीं जाता, अपितु सेवा-भक्ति करते हुए कल्याण की प्राप्ति के लिए जाता है। जैसे दुनिया का और हमारा संबंध अल्पकालीन है वैसे गुरु का शरीर और हमारा संबंध भी अल्पकालीन है। शाश्वत तो गुरु का ज्ञान है और उस ज्ञान का जीवन में आचरण गुरु की असली भक्ति है और उससे ही सब दुखों की निवृत्ति और सब सुख की प्राप्ति होती है।

ज्ञान का अर्थ जानकारी, विद्वता, वाक्छटा द्वारा बहुतों को प्रभावित कर लेना नहीं है, किंतु निर्मोहता, निष्कामता और अनासक्ति है। मोह, कामना और आसक्ति ही भवसागर है तथा इनका त्याग कर देना भवसागर से पार हो जाना है। इसका साधन है दुनियादारी-सांसारिकता से मन को हटाकर आत्मलीन, अंतर्मुख कर लेना और इसका साधन है गुरु-भक्ति, गुरु-ज्ञान। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—

यह दुनिया दो रोज की, मत कर यासो हेत।
गुरु चरणन चित लाइये, जो पूरण सुख देत॥

—धर्मेन्द्र दास

महादान

लेखिका—श्रीमती विद्या साहू

देने वाले को उसकी उचित आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी कमी नहीं होती, लेकिन मांगने वाले का पेट कभी नहीं भरता। आज हम वह हैं जो कल तक सोचते और करते रहे; कल हम वह होंगे जो आज सोचेंगे और करेंगे। इसलिए जो सदैव देने की भावना रखता है उसे कभी मांगने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अपनी योग्यता और सामर्थ्य अनुसार अन्न, वस्त्र और औषधि का दान करने का अवसर आने पर कभी सोच-विचार करने में समय नहीं गंवाना चाहिए।

अन्न, वस्त्र और दवाई इन्हें किसी को भी बिना सोचे दिया जा सकता है। यदि हम दूसरे के अन्न को छीनकर, चोरी कर खाते हैं तो वह बहुत बड़ा पाप है।

यदि कोई बीमार है तो उसकी सेवा कर दें, सहायता कर दें। सेवा तीन प्रकार से होती है—तन से, मन से और धन से। यदि आपका शरीर स्वस्थ है तो शरीर से किसी की सेवा कर दें, यदि आपके पास धन है तो धन से सेवा कर दें और यदि तन और धन से सेवा नहीं कर सकते तो मन तो सभी के पास होता है। अतः आप मन

से किसी की भी सेवा कर सकते हैं। आप मन से प्रार्थना करें क्योंकि प्रार्थना से बड़ी शांति मिलती है।

रक्तदान जीवनदान

रक्तदान करने से शरीर सुंदर और स्वस्थ होता है और जीवन भी सुंदर बनता है। रक्तदान से रक्त का शुद्धिकरण होता है। रक्त की जांच हो जाती है। रक्तदान करने से नये सेल बनते हैं, जो शरीर में प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं। यह आक्सीजन पार्लर का काम भी करता है। रक्तदान करने के लिए उम्र 17 से 60 वर्ष होनी चाहिए। शरीर स्वस्थ होना चाहिए। हर 90 दिन के बाद रक्तदान किया जा सकता है। रक्तदान करने वालों को हरी सब्जी और आयरन वाली चीजें खानी चाहिए। यदि आप आयरन वाली चीजें लेते हैं तो चाय नहीं लेना चाहिए।

रक्तदान करना किसी के जीवन को बचाना है। आपने यदि रक्तदान किया है तो किसी को नई जिंदगी दी है। यदि कोई संत रक्तदान करता है तो जिसको भी रक्त मिलेगा उसका विचार संत जैसा हो जायेगा। संत किसी को अपना रक्तदान करके न केवल उसको जिंदगी देंगे बल्कि उन्हें अपने सोच और विचार भी देंगे। एक अन्न का दाना हमारे शरीर के अंदर जाता है तो उसका हमारे मन पर प्रभाव पड़ता है। "जैसा खाये अन्न वैसा होवे मन।" यहां पर तो रक्त की बात है। यदि संत या अच्छे इंसान का रक्त दूसरे इंसान के शरीर में जायेगा तो उसका विचार कैसे नहीं बदलेगा! हम कहते हैं न, हमारी रगों में हमारी मां का खून है।

नेत्रदान महादान

आंख को निकालने के बाद दो महीने तक सुरक्षित रखा जा सकता है, परंतु यह व्यवस्था भारत में कुछ स्थानों पर ही है। नेत्रदान की प्रक्रिया मृत्यु के डेढ़-दो घंटे के अंदर हो जानी चाहिए। आज हमारे देश में डेढ़ करोड़ से ज्यादा लोग दृष्टिहीन हैं जबकि कुछ मुट्ठी भर लोग ही नेत्रदान करते हैं। हर वर्ष तीन लाख नये दृष्टिहीन होते हैं और सिर्फ दस हजार आंखें ट्रांसप्लांट होती हैं। जागरूकता की कमी से लोग नेत्रदान करने से डरते हैं। लोगों की गलत मान्यता यह है कि यदि हम नेत्रदान कर देंगे तो अगले जन्म में नेत्रहीन हो जायेंगे। लोगों की कैसी-कैसी सोच होती है, जैसा सुना वैसा ही मान लिया। कोई इस पर विचार तक नहीं करता।

आंख का महत्त्व उससे बेहतर और कौन समझ सकता है जिसने कभी दुनिया ही नहीं देखी है। एक इंसान आंख के लिए तरस रहा है और दूसरा इंसान उसे व्यर्थ में जला रहा है, गलत मान्यता और गलत सोच के कारण। नेत्रहीन कैसे जिंदगी जीते हैं इसका अहसास करने के लिए प्रेक्टिकल करके देखें। रात्रि में पूरी लाईट बंद कर दें और कुछ भी कार्य करने की कोशिश करें। बेचैन हो जायेंगे। आप कुछ भी नहीं कर पायेंगे। जैसे ही लाईट बंद होती है तुरंत हम मोमबत्ती, टार्च आदि का सहारा लेते हैं। सोचें, जो नेत्रहीन जिंदगी जीता है वह कैसे जीता होगा। क्या आप उस नेत्रहीन व्यक्ति के बारे में नहीं सोच सकते। उनकी जगह आप अपने को रख कर देखें। सोचें जिसने कभी दुनिया देखी ही नहीं यदि उसे आंख मिल जाये तो उसे कैसा अहसास होगा। क्या आप अपनी आंखें उसे नहीं दे सकते! जीते जी तो इंसान इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। यह तो मरने के बाद ही किया जाना है। लेकिन इसके लिए लोग कहां सोचते हैं।

किसी के काम जो आये उसे इंसान कहते हैं,
पराया दर्द अपनाये उसे भगवान कहते हैं।

हम भजन तो अच्छा गा लेते हैं लेकिन सिर्फ गाते हैं, उसे अपनी जिंदगी में अपनाते नहीं। जो दूसरों के दुख को देखकर दुखी हो जाता है और दूसरों के सुख को देख कर खुश हो जाता है वह इंसान के रूप में साक्षात् भगवान है।

31 मार्च 2012 को "प्रभलीन" की मौत हो गई। वह 5 वर्ष की थी। उसे हार्ट अटैक आया था। जब उसके पिता उसको लेकर हास्पिटल पहुंचे तो डॉक्टरों ने बताया उसकी मौत हो चुकी है। सुनते ही जैसे उसकी दुनिया उजड़ गई। लेकिन उसके पिता उसको जिंदा देखना चाहते थे। पूरे परिवार से बात की और तय

किया कि हम अपनी बेटी की आंखें दान करेंगे। वह रोटरी क्लब का सदस्य था। उन्होंने पुनर्जोत आई बैंक सोसायटी से संपर्क किया और प्रभलीन की एक आंख अमृतसर की 11 साल की बच्ची को व दूसरी आंख जालंधर की 45 वर्षीया महिला को लगाई गई। एक दिन प्रभलिन के पिता इन दोनों से मिले जिन्हें उनकी बेटी की आंखें लगाई गई थीं। जैसे ही वे दोनों सामने आयीं और उन्होंने दोनों को देखा तो उन्हें ऐसा लगा जैसे उनकी नजरों के सामने उनकी बेटी खड़ी है और एक नहीं दो। अपनी बेटी की कमी पूरी हो गई। यदि कोई गृहस्थ नेत्रदान करता है तो उन्हें अपनों की कमी महसूस नहीं होगी।

देहदान

नेत्रदान के साथ देहदान भी महादान है। जो हमें सबसे प्रिय हो उसी का दान श्रेष्ठ दान कहलाता है। संतजन प्रायः कहा करते हैं कि ऐसी चीजों का दान करना चाहिए जो हमें सबसे अच्छी लगती हो और सबसे प्रिय हो। हमारा शरीर ही हमें सबसे प्रिय है। मरने के बाद भी हमारा शरीर किसी के काम आ सकता है लेकिन लोग इसे देने से डरते हैं। देना नहीं चाहते। संतजन प्रायः कहा करते हैं कि मनुष्य का शरीर जीते जी काम आता है, मरने के बाद कोई काम नहीं आता। लेकिन जीते जी अच्छा काम करते हैं और यदि मरने के बाद अपने शरीर का दान करते हैं तो हमारा शरीर व्यर्थ नहीं जायेगा। मनुष्य को दुनिया का श्रेष्ठ प्राणी माना गया है और है भी। यदि संत देहदान करते हैं तो उनकी एक भी चीज व्यर्थ नहीं जायेगी। संत तो जीते हैं दुनिया के लिए और जीते-जीते अपना शरीर भी दे दें तो उनका शरीर भी व्यर्थ नहीं जायेगा। उनके ज्ञान के साथ उनके शरीर की खुशबू दूर-दूर तक फैल जायेगी। मेडिकल के हर क्षेत्र में आयुर्वेद, होम्योपैथी, एलोपैथी, डेन्टल सभी प्रकार के डॉक्टरी कोर्स करने वाले छात्र मृत शरीर पर प्रैक्टिकल करते हैं। प्रैक्टिकल के लिए शरीर नहीं मिलता। यदि उन्हें अच्छे लोगों या संतों का मृत शरीर मिल जाये तो अच्छे मन से करेंगे क्योंकि संत जहां भी जाते हैं अपनी खुशबू बिखेर देते हैं। यदि छात्र किसी संत के मृत शरीर पर प्रैक्टिकल करें तो उनका विचार बदलेगा और अच्छे मन से प्रैक्टिकल करेंगे और अच्छे डॉक्टर बनेंगे। केवल पैसों के लिए नहीं वे सेवा के लिए कार्य करेंगे। आज अनेक डॉक्टर सिर्फ पैसों के लिए कार्य करते हैं।

हमारा शरीर मिट्टी, पानी, आग, हवा आदि पंच महाभूतों से निर्मित है। इसका पोषण भी इन्हीं तत्त्वों से होता है। माता-पिता, परिवार एवं समाज इसके रक्षक होते हैं। प्राणी-पदार्थों के सहयोग से ही हमारा शरीर कायम है, चलायमान है। अतः हम अपने शरीर पर जितना अधिकार मानते हैं उतना या उससे कहीं ज्यादा समाज का अधिकार है। शरीर हम खरीदे नहीं हैं बल्कि माता-पिता, समाज एवं प्रकृति द्वारा उपहार-स्वरूप मिला है। ऐसी स्थिति में इस शरीर का सही उपयोग अर्थात आत्म-कल्याण का काम कर लें और पुनः इसे समाज को लौटा दें।

वृक्ष अपना फल स्वयं नहीं खाता, धरती अपना अन्न स्वयं ग्रहण नहीं करती। वृक्ष का जीवन हमेशा दूसरों के लिए होता है। वह स्वयं धूप को सहन कर हमें छाया देता है। पत्थरों की चोट खाकर हमें फल देता है। धरती मां दुनिया का सारा बोझ अपने ऊपर ले रही है और हमें आश्रय दे रही है। धरती, अंबर, वायु, जल ये सब अपने लिए नहीं दूसरों के लिए हैं तो क्या हम मनुष्य होने के नाते इतना भी नहीं कर सकते जिससे दूसरों का हित हो। आश्चर्य इस बात का है कि इंसान होकर इंसान के दुख-दर्द को नहीं समझ पाते!

एक संत नदी में स्नान कर रहे थे। संत ने देखा कि बिच्छू पानी में डूब रहा है। उसे बचाने के लिए उसने पकड़ा। बिच्छू जोर से डंक मारा फिर पानी में गिर गया। संत ने दूसरी बार फिर बिच्छू को बचाने की कोशिश की बिच्छू फिर से डंक मारा। उन दोनों के बीच ऐसा बार-बार चलता रहा। एक व्यक्ति ने संत से कहा—यह बिच्छू आपको बार-बार डंक मारता है फिर भी आप उसे बचाने की कोशिश करते हैं। इस पर संत

ने बहुत सुंदर जवाब दिया—जब एक बिच्छू अपना डंक मारने का स्वभाव नहीं बदल रहा है तो मैं अपने स्वभाव को कैसे बदल सकता हूं। संत का स्वभाव है—दया। इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि सामने वाला व्यक्ति चाहे हमसे कितना भी दुर्व्यवहार करे हमें अपने स्वभाव को नहीं बदलना है।

संत जन कहते हैं—"आज हमारे देश की हानि दुष्टों की दुष्टता से कम सज्जन व्यक्तियों की उदासीनता से ज्यादा हो रही है।" आज भी इस दुनिया में अच्छे लोगों की कमी नहीं है लेकिन वे सोचते हैं कि हमें क्या करना है, हमें किसी चीज की जरूरत नहीं है, हम तो अच्छे से रह रहे हैं। लोग सोचते हैं कि हम अकेले क्या कर सकते हैं लेकिन नहीं, इस देश में अगर एक भी अच्छा इंसान आ जाता है तो कितने लोगों की जिंदगी बदल देता है। आज हमारे देश में 50 लाख संत हैं। यदि वे एक-एक क्षेत्र में कार्य करने लगें तो हमारा भारत फिर से सोने की चिड़िया कहलाएगा। आज दुनिया को सभी तरह के लोगों की जरूरत है। यदि एक-एक क्षेत्र में कार्य करने का संकल्प कर ले कि मुझे इस क्षेत्र में कार्य करना है तो इस देश का कल्याण हो जायेगा। जैसे किसी ने अनाथ आश्रम का निर्माण किया है, किसी ने वृद्धाश्रम का, गौशाला का, विधवा आश्रम का, निःशुल्क चिकित्सा सेवा का, कोई योग का, लेकिन देहदान पर आज तक किसी ने कोई विशेष कदम नहीं उठाया। इस पर भी ठोस कदम उठाएं। हम सभी क्षेत्रों में कार्य करें यह तो संभव नहीं है लेकिन किसी एक क्षेत्र में विशेष कदम तो उठा ही सकते हैं। क्यों न हम कोई विशेष कार्य करें। लोगों की गलत मान्यता, गलत सोच को दूर करें, क्यों न हम लोगों को नेत्रदान/देहदान के लिए प्रेरित करें जिससे हमारे भारत का हर इंसान नेत्रहीन होने से बच जाये। हम उसे रोशनी दे दें। ब्लड न मिलने के कारण किसी की मृत्यु न हो।

हम यह सोचकर जिंदगी न जीयें कि हमें क्या मिला है बल्कि हम यह सोचकर जिंदगी जीयें कि हमने दूसरों के लिए क्या किया है और हमें दूसरों के लिए क्या करना है। असली दान वही है जिसमें कोई चाहना न हो और कोई स्वार्थ न छिपा हो। यदि लोग यह सोचकर दान करते हैं कि हमें पुण्य मिलेगा तो वह दान दान नहीं व्यापार है।

यदि हम अपने बारे में सोंचेंगे तो हम दूसरों का भला कभी नहीं कर सकते। देहदान तो मरने के बाद ही होना है। लोग जीते जी तो श्मशान घाट से दूर भागते हैं उसको सीधी नजर देखना भी पसंद नहीं करते हैं लेकिन मरने के बाद वहां जाना चाहते हैं।

जिंदगी जब तक है रोज 10 मिनट जाकर श्मशान घाट में बैठ जायें। इससे आपको अपनी मृत्यु का बोध होगा और मरने के बाद वहां से विदा हो जायें। हमें यहां नहीं रहना है। हमें किसी की जिंदगी बचानी है। आश्चर्य इस बात का है कि लोग जीते जी तो अपने शरीर पर अधिकार समझते ही हैं लेकिन मरने के बाद भी उस पर अपना अधिकार जमाना चाहते हैं। 99.99 प्रतिशत लोग देहदान नहीं करते। वे सोचते हैं कि यह धर्म के खिलाफ है। वे चाहते हैं कि हमारा अंतिम संस्कार हो।

गलत मान्यता

दुनिया के किसी भी शास्त्र में यह नहीं लिखा है कि दान करने से पाप होता है। परंतु आज लोगों की गलत मान्यता यह है कि यदि हम नेत्रदान किये तो अगले जन्म में अंधे हो जाएंगे, अंगदान करेंगे तो हमें अगले जन्म में पूरा अंग नहीं मिलेगा। जब तक अंतिम संस्कार नहीं होगा आत्मा भटकेगी। यही लोगों की गलत मान्यता है जिसे हमें दूर करना है। यदि यह मान्यता सच है कि देहदान करने से अगले जन्म में देह नहीं मिलेगी तो लोगों को देहदान अवश्य करना चाहिए ताकि अगले जन्म में देह की प्राप्ति न हो। जब देह की प्राप्ति न होगी तब जीव मुक्त हो जायेगा और मुक्ति सबको प्रिय है।

अंतिम इच्छा

ना तन मांगती हूं ना मांगती हूं धन।
किसी की चाहत नहीं है, हे मेरे गुरुवर!
सांस थम जाये, तो कोई गम नहीं।
बस एक ही चाहत मांगती हूं,
मरने के बाद किसी के काम आ जाये मेरा यह तन।
बस देना यही कफन, बस देना यही कफन।

हिन्दू कहौं तो मैं नहीं मुसलमान भी नाहिं

लेखक—श्री धर्मदास

(गतांक से आगे)

आखिरकार संत कबीर क्या थे? उन्हें लोग किस रूप में आदर दें?

आज से 2600 वर्ष पहले सिद्धार्थ ने जन्म लिया था। पूरे छः वर्ष कठोर तपस्या की साधना जंगल में किया था तब उन्हें बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी। अध्यात्म शास्त्र के सूक्ष्म सिद्धान्तों में न जाकर उन्होंने नैतिकता का धर्म मार्ग निश्चित किया। अपने अनुभव से प्रतिपादित धर्माचरण का ज्ञान अपने परिचित पांच तपस्वियों के साथ बांटा। यही 'धर्मचक्र प्रवर्तन' का प्रथम उपदेश कहलाया। महात्मा बुद्ध ने तत्कालीन समाज की बुराइयों को दूर करके शुद्ध-पवित्राचरण की जीवन-पद्धति का प्रचार किया। इसीलिए आज भी विश्व का सर्वाधिक प्रचलित धर्माचरण है। चाहे कोई किसी धर्म का अनुयायी है वह भी बुद्ध के नीतिशास्त्र को हृदय से मान देता है। महात्मा बुद्ध के बाद भारतीय उपमहाद्वीप में अनेकों धर्म-धुरन्धर आये और बौद्ध धर्म को नष्ट करके प्राचीन याज्ञिक-संस्कृति को पुनर्स्थापित करने की चेष्टा करते रहे। न तो हिंसात्मक यज्ञों की प्राचीन संस्कृति लौटी और न तो बौद्ध धर्म पूर्णतः नष्ट हुआ। दोनों क्रियाओं के मिश्रित प्रभाव से धर्म के नये-नये रूप जरूर बने-बिगड़े। लेकिन मध्य युग आते ही नाथ, सिद्ध, योगी, वाममार्गी, तान्त्रिक एवं शाक्तों ने समाज में दुराचरण का जाल फैला दिया था। बौद्ध एवं जैन मत भी उसके दुष्प्रभाव से नहीं बच सके। कृष्णाश्रयी एवं रामाश्रयी भक्ति में बौद्ध धर्म की अनेक अच्छाइयां उधार में ली गयीं किन्तु भेदभावमूलक कुरीतियों का नाश नहीं हो सका।

इसी वातावरण में संत कबीर ने अपने अनुभव जन्य धर्माचरण का प्रचार किया। जनमानस में शुद्ध आचार-विचार-विहार का प्रचार किया जिसमें न किसी धर्मशास्त्र का अनुशासन था और न किसी बिचौलिया की, मध्यस्थता की आवश्यकता रही। महात्मा बुद्ध द्वारा चलाया गया सामाजिक परिवर्तन का कार्य 'धर्मचक्र प्रवर्तन' कहा जाता है तो संत कबीर का कार्य 'सामाजिक-धार्मिक क्रांति' का प्रतीक था। समसामयिक परिस्थितियों की दृष्टि से बुद्ध काल उतना खतरनाक नहीं था जितना कबीर का काल था। देश में इस्लामी कानून था जिसमें ईश निन्दा के लिए प्राणदण्ड था।

उस युग की विषम परिस्थितियों में भी संत कबीर ने तत्कालीन धार्मिक सम्प्रदायों की धोखाधड़ी, ठगी, ढोंग एवं पाखण्ड के ऊपर जमकर प्रहार किया जिनकी चर्चा पर्याप्त रूप से पहले की गयी है। नाभादास जी ने संत कबीर का मूल्यांकन 'भक्तमाल' में करते हुए जो उनकी विशेषताओं का उल्लेख किया है उनसे किसी को असहमति नहीं है—

भक्ति विमुख जो धरम ताहि अधरम करि गायो।
जोग जग्य ब्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो॥
हिन्दू तुरुक प्रमान रमैनी सबदी साखी।
पच्छपात नहिं बचन सबहिं के हित की भाखी॥
आरूढ़ दसा ह्वै जगत पर मुखदेखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षटदर्सनी॥

देश एवं समाज संत कबीर का कितना ऋणी है इस बात का अंदाजा 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजा राम मोहन राय, दयानंद सरस्वती, विवेकानंद तथा 20वीं शताब्दी में गांधी, नारायणगुरु एवं अंबेडकर जैसे महापुरुषों द्वारा चलाये गये सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों की पृष्ठभूमि पर एक नजर डालने पर आसानी से लगाया जा सकता है। समाज की जिन कुरीतियों का नाश करके नये समाज के निर्माण के लिए इन सभी महापुरुषों ने आन्दोलन चलाया था उनके लिए सर्वप्रथम 500 साल पहले संत कबीर ने अकेले ही एक आन्दोलन खड़ा किया था। इन लोगों के सामाजिक

सुधार के आन्दोलन को भारत में पुनर्जागरण (Renaissance in India) माना जाता है। इतिहासकारों ने इसे 'THE DAWN OF NEW INDIA' नये भारत का उषा-काल भी कहा है। वस्तुतः इन सब का बीजारोपण संत कबीर ने किया था। इन महापुरुषों को जानने-समझने की जो सुख-सुविधा मिली थी, देश-विदेश में शिक्षा ग्रहण करने एवं दुनिया देखने का अनुभव प्राप्त हुआ था, उनमें से शतांश भी कबीर के हिस्से में था।

संत कबीर के धार्मिक आन्दोलन का उद्देश्य धर्म के सच्चे स्वरूप को प्रतिष्ठापित करना और समाज की कुरीतियों को दूर करना था। विदेशी धरती पर ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म, जिनके सर्वाधिक अनुयायी अभी हैं, की परिकल्पना हुई। उनमें अहिंसा का सिद्धान्त नहीं है। परन्तु 500 ई. पू. बुद्ध, महावीर एवं चार्वाक जैसे चिन्तकों ने सत्य, प्रेम एवं अहिंसा के सिद्धान्त पर धर्म की नींव रखी थी। आगे चलकर प्रतिक्रियात्मक धाराओं ने उन सिद्धान्तों को धूमिल कर दिया था जिसके फलस्वरूप काले-गोरे तथा ऊंच-नीच की धारणा उपजी। इस धारणा को जन्म के साथ जोड़कर शिल्पकारों एवं उत्पादकों को समाज में नीचा दर्जा दिया गया। यह सामंती सोच थी लेकिन इसको ईश्वरीय बताकर पुख्ता किया तत्कालीन धर्माधिकारियों ने। राजनीतिक सत्ता परिवर्तन सेना-बल से संभव था किन्तु धर्म राज-परिवारों को प्रभावित करता था। संत कबीर को राजसत्ता का लोभ नहीं था। परन्तु सामाजिक गिरावट एवं उत्पीड़न उनके लिए चिंता का विषय था। इसीलिए संत कबीर ने भारतीय समाज को सुधारने के लिए धर्म को आधार बनाया। इस्लामीकरण तब तलवार के जोर पर हो रहा था। कुछ भय से और कुछ अपने धर्म से उत्पीड़ित होकर मूल धर्म से पलायन कर रहे थे। ऐसे समय में संत कबीर ने धर्म को नये ढंग से परिभाषित किया जो धार्मिक पलायन के मार्ग में प्रभावकारी पग-बाधा सिद्ध हुआ। संत कबीर से संस्कारित होकर अनेक संतों ने उनकी क्रांति का प्रचार-प्रसार किया। समाज पर कितना अधिक प्रचार इन संतों का था कि 150 साल बाद भी उसकी गूंज गोस्वामी को सहन नहीं थी जो खीझ के रूप में प्रकट हुआ (रामचरितमानस, उत्तरकांड, 98) :

शूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ज्ञाना।
मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना॥
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा।
स्वपच किरात कोल कलवारा॥
नारि मुई घर सम्पति नासी।
मूड़ मुड़ाय होहिं संन्यासी॥
ते बिप्रन सन आपु पूजावहिं।
उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥
सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना।
बैठि बरासन कहहिं पुराना॥

ब्राह्मणों को शूद्र ज्ञानोपदेश करते हैं और गले में जनेऊ डालकर कुत्सित दान लेते हैं। वर्णों में अधम तेली, कुम्हार, श्वपच, भील, कोल और कलवार स्त्री के मरने पर अथवा घर की सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर सिर मुड़ाकर संन्यासी हो जाते हैं। शूद्र जप, तप और व्रत करते हैं तथा व्यास गद्दी (ऊंचे आसन) पर बैठकर पुराण कहते हैं।

अधिकांश विद्वानों ने और मैंने भी, मानस की उपर्युक्त पंक्तियों को उनकी सोच पर वर्णवादी नैतिकता का दोषारोपण के लिए प्रयुक्त किया है लेकिन इसे ऐतिहासिक घटना के रूप में देखने पर एक तथ्य प्रकट होता है कि उस समय का समाज 180^0 (सीधा उलटा) घुम चुका था। नये परिवर्तन के फलस्वरूप जन्म से शूद्र संतों से ब्राह्मण लोग भी दीक्षा लेकर ज्ञान प्राप्त कर रहे थे। निम्नतम जातियों के लोग भी वैराग्य ले रहे थे, और ब्राह्मणों की तरह पूजे जा रहे थे। शूद्र समाज धार्मिक कार्यों जैसे जप, तप एवं नाना प्रकार के व्रतों में प्रवृत्त हो गया था। इस बदलाव के पीछे कबीर का आन्दोलन था जिसने शूद्रों एवं अस्पृश्यों को भी संन्यास ग्रहण करने का अधिकार किया था। सामंती दृष्टिकोण एवं मनुस्मृति ने यह अधिकार केवल द्विज जातियों को दे रखा था। गोस्वामी जी को दोहरी खीज थी; एक तो संन्यास आश्रम शूद्रों के लिए वर्जित था फिर भी वे लोग

संन्यासी हो रहे थे, दूसरी 'बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी' (उ. का. 99/3)—ब्राह्मण अपढ़, लोभी, कामी, आचरणहीन, मूर्ख और नीची जाति की स्त्रियों के स्वामी हो रहे थे। बिप्र निरच्छर....बृषली स्वामी'—से लगता है कि ब्राह्मण लोग वैदिक शिक्षा छोड़कर तान्त्रिक-वामाचार में संलिप्त थे। यहां संत कबीर की उपलब्धि स्पष्ट होती है कि निम्न जातियों को, जिनमें तान्त्रिकों का प्रभाव अधिक था तथा अधिक संख्या में मुसलमान भी बन रहे थे, शुद्ध एवं सात्त्विक आचरण के लिए प्रवृत्त करके उन्हें ऊंचा स्थान दिलाने में निर्गुणी संतों ने विजय पायी थी। यह बात अलग थी कि वर्ग एवं वर्णभेद की नीति में विश्वास करने वालों को यह अच्छा नहीं लगता था कि शूद्र लोग द्विजों की भांति धर्माचरण करें अथवा समाज उनका आदर करे।

उपर्युक्त संदर्भों से विदित है भारत के गैर इस्लामी समाज में एक वर्ग ऐसा था जो जन्म आधारित ऊंच-नीच का भेद सदैव बनाये रखना चाहता था। उनके धार्मिक एवं सामाजिक सुधार कार्यक्रम भी मनु की वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था। ऐसी सोच वाले कबीर के समय थे, बाद में भी रहे और भारत आजाद हुआ तब भी थे। स्वतंत्र भारत के लिए जब संविधान निर्माण कार्य शुरू हुआ तब संत कबीर के शब्दों को संविधान में तरजीह (Preference) दी गयी। भारतीय संविधान की मानवतावादी उपबंधें (Provisions of regulations) इस बात के प्रमाण हैं।

संविधान निर्माण हेतु संविधान सभा गठित की गयी थी जिसकी प्रथम बैठक 9 दिसम्बर, 1946 ई. को हुई। 26 दिसम्बर, 1949 ई. को संविधान निर्माण कार्य पूर्ण हुआ तथा कुछ नियम उसी रोज से लागू हो गये जबकि शेष 26 जनवरी, 1950 से लागू हुए। इस प्रकार आजाद भारत में स्मृतियों पर आधारित सभी विधि-व्यवस्था का उन्मूलन कर दिया गया। संविधान की प्रस्तावना में घोषणा की गयी है कि "सभी भारतीय नागरिकों के लिए न्याय—(सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक); आजादी—(विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था एवं उपासना की); समानता—(प्रतिष्ठा की एवं अवसर (मौका) की); तथा उन सबके बीच बन्धुत्व को बढ़ावा देने के लिए व्यक्तिगत मान-मर्यादा एवं राष्ट्र की एकता का आश्वासन देते हुए सुरक्षित करने का संकल्प लिया जाता है।" उपर्युक्त संकल्प पर जितना गम्भीर चिंतन किया जाता है उतना स्पष्ट होता है कि संविधान सभा ने कबीर-बीजक का गहन-गंभीर चिंतन-मनन करके उसके सार को पूर्णतः स्वीकार कर लिया है। इसी से निश्चित-सा हो जाता है कि संविधान के उपबन्धें कबीर के विचारों पर आधारित होंगे।

संविधान (पार्ट-3) में मौलिक अधिकारों (Fundamental Rights) शीर्षक के अंतर्गत अनुच्छेद 13(3) में विधान है कि 'राज्य कोई कानून नहीं बनायेगा जो इस भाग में प्रदत्त अधिकारों को खतम करे या घटा सके तथा यदि इसका उल्लंघन करते हुए कोई कानून बनाया गया तो वह शून्य हो जायेगा।" अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतीय नागरिकों को कितने महत्त्वपूर्ण अधिकार दिये गये हैं कि उनके मौलिक अधिकारों को छीनने या घटाने का अधिकार किसी को भी नहीं है। इन संवैधानिक अधिकारों के आमने-सामने कबीर साहित्य से अनेकों उदाहरण रखे जा सकते हैं, किन्तु संक्षेप में कुछ इस प्रकार हैं—

बीजक के शब्द 75 की कुछ पंक्तियां हैं—

वेद कितेब दीन औ दोजख, को पुरुषो को नारी-2
एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा-5
एक बून्द से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा-6
कहहिं कबीर राम रमि रहिये, हिन्दू तुरुक न कोई-8

संविधान के मौलिक अधिकारों से तुलनात्मक रूप :

अनुच्छेद 14—राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के सामने बराबरी अथवा समान सुरक्षा से वंचित नहीं कर सकता।

15 (1)—राज्य किसी भी नागरिक को धर्म, कबीला, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर या किसी एक के विरुद्ध भेदभाव नहीं कर सकता।

15 (2)—धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर किसी भी नागरिक पर निम्न के संबंध में (a) दुकानों, होटलों एवं सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में आने-जाने पर (b) कुओं, तालाबों, नहाने के घाटों, सड़कों एवं राज्य संचालित सार्वजनिक स्थलों का प्रयोग करने पर—निशक्त, भार, रोक अथवा शर्त के अधीन नहीं किया जा सकता। अर्थात उक्त स्थलों पर आने-जाने से किसी पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता है तथा उन जगहों पर उपलब्ध सुविधाओं से किसी भी नागरिक को मना नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद 16 (2) धर्म, वंश, जाति, लिंग, नस्ल, निवास या किसी अन्य के आधार पर कोई नागरिक अपात्र नहीं होगा अथवा राज्याधीन किसी नौकरी या पद के लिए किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जायेगा।

छुआछूत :

कहु धौं छूति कहां से उपजी, तबहिं छूति तुम मानी-1
एकै पाट सकल बैठाये, छूति लेत धौं काकी-6
छूतिहिं जेवन छूतिहिं अंचवन, छूतिहिं जगत उपाया-7

(शब्द 41)

पांडे बूझि पियहु तुम पानी-1 (शब्द 47)
ऊंच नीच है मध्य की बानी, एकै पवन एक है पानी-22
एकै मटिया एक कुम्हारा, एक सबन का सिरजनहारा-23
एक चाक सब चित्र बनाई, नाद-बिन्द के मध्य समाई-24
व्यापक एक सकल की ज्योती, नाम धरे का कहिये भौती-25
हंस देह तजि न्यारा होई, ताकर जाति कहै धौं कोई-27
स्याह सफेद कि राता पियरा, अबरण बरण कि ताता सियरा-28
हिन्दू तुरुक कि बूढ़ो बारा, नारि पुरुष का करहु बिचारा-29

(बिप्रमतीसी)

जो तू करता वर्ण बिचारा, जन्मत तीनि दण्ड अनुसारा-1
जन्मत शूद्र मुये पुनि शूद्रा, कृतम जनेऊ घालि जग धन्दा-2

(रमैनी 62)

अनुच्छेद 17 : 'छुआछूत' समाप्त किया जाता है और किसी भी रूप में इसका व्यवहार वर्जित किया जाता है। 'छुआछूत' संबंधी किसी भी प्रकार के प्रतिबंध को मानने के लिए विवश किया जाना कानूनन दण्डनीय अपराध होगा।

धार्मिक स्वतंत्रता—संत कबीर के जमाने में राज्य (देश) धर्म इस्लाम था। दूसरे धर्म मानने वालों पर जजिया कर लगता था। धार्मिक स्थलों—मंदिर, गिरजाघर के निर्माण तथा तीर्थ यात्रा के लए अनुमति लेनी पड़ती थी तथा शुल्क चुकाना पड़ता था। वहीं मुसलमानों को धार्मिक काम के लिए पूरी छूट थी। तब कबीर ने कहा—

भाई रे दुइ जगदीश कहाँ ते आया, कहु कौने बौराया
अल्लाह राम करीमा केशव, हरि-हजरत नाम धराया
गहना एक कनक ते गहना, यामें भाव न दूजा
कहन सुनन को दुइ कर थापे, एक निमाज एक पूजा
वोही महादेव वोही महम्मद, ब्रह्मा आदम कहिये
को हिन्दू को तुरुक कहावै, एक जिमि पर रहिये

धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार के अंतर्गत अनुच्छेद 25, 26, 27 एवं 28 के द्वारा व्यवस्था दी गयी है।

अनुच्छेद 25 (1) : हर एक व्यक्ति विवेक की स्वतंत्रता एवं धर्म का खुलेआम प्रदर्शन करने, व्यवहार करने और प्रचार करने के अधिकारों के लिए समान रूप से हकदार है। अनु. 25 (2) (b) सामाजिक कल्याण हेतु या हिन्दुओं के सार्वजनिक धार्मिक स्थलों-संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों के लिए खोलने संबंधी कानून बनाने में राज्य को कोई बाधा नहीं होगी। इस अनुच्छेद की दो व्याख्याएं अति महत्त्वपूर्ण हैं—

(1) तलवार पहनना तथा लेकर चलना सिखधर्म के व्यवहार में सम्मिलित माना जायेगा।

(2) उपर्युक्त उपबंध (2) (b) में 'हिन्दू' का तात्पर्य सिख, जैन या बौद्ध धर्म का अर्थ माना जायेगा। उसी प्रकार हिन्दू धार्मिक स्थल का भी अर्थ किया जायेगा।

यहां स्पष्ट है कि संविधान निर्माताओं ने भारतीय समाज को संत कबीर की परिभाषा के अनुरूप 'हिन्दू-तुरुक' केवल दो सम्प्रदायों के रूप में मान्यता दिया है

तथा सिख, जैन एवं बौद्ध धर्मावलंबियों को भी हिन्दू-सम्प्रदाय में गणना किया गया है।

अनुच्छेद 26 (a) : हर एक धार्मिक वर्ग या सम्प्रदाय को धार्मिक एवं धर्मार्थ संस्थाएं बनाने तथा चलाने का अधिकार होगा।

स्वतंत्रता का अधिकार : संत कबीर ने बोलने के अधिकार का प्रयोग करने के लिए समाज के कमजोर वर्गों का नेतृत्व किया :

संतो बोले ते जग मारे

अनबोले ते कैसक बनिहैं, शब्दहिं कोइ न बिचारे

भ्रष्ट राजतंत्र एवं ढोंगी व्यवस्थापकों पर कड़ा प्रहार किया—

दुन्दुर राजा टीका बैठे, विषहर करे खवासी
श्वान बापुरा धरिन ठाकनो, बिल्ली घर में दासी

(शब्द 9)

अनुच्छेद 19 : सभी नागरिकों का अधिकार होगा—

(a) बोलने एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की।

सच बोलने में लोग आज भी डरते हैं और कबीर के समय में भी डरते थे। आज भी लोगों को मुंह बंद रखने के लिए विवश किया जाता है और तब तो किसी संबंध में लोगों से राय नहीं ली जाती थी। प्रजा रातोरात दूसरे राजा को सौंप दी जाती थी। मनमाना टैक्स वसूला जाता था। धरती और स्त्री कब्जे में कर ली जाती थी। उस समय कबीर ने कहा था कि 'संतो बोले ते जग मारे' लेकिन 'अनबोले ते कैसक बनिहैं'।

उपसंहार—भारत में संत कबीर का व्यक्तित्व अनूठा है जो किसी परिभाषा में कैद नहीं और जिसे किसी एक रूप में सीमित नहीं किया जा सकता। वे क्रान्तिकारी, समाज सुधारक, समाज के पहरेदार, प्रकाश स्तंभ, पथ प्रदर्शक, साहेब, अध्यापक, गुरु, मास्टर अनेक रूपों में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। संत और आध्यात्मिक नेता ऐसा जो सच और झूठ का पर्दाफाश करता है। वे बताते हैं कि गुरु का स्थान गोविन्द से ऊपर है क्योंकि गुरु ही गोविन्द से परिचय कराता है। हर एक मोड़ पर हमें जगाते हैं—

'तेरी गठरी में लागा चोर बटोहिया क्या सोवै'; 'संतो जागत नींद न कीजै'। उनके विशाल कद को 'भक्त' और 'भगवान' की संज्ञा में बांधना उसे छोटा करने जैसा है। उनकी ऊंचाई को दर्शाती यह साखी अवलोकनीय है—

कबीर का घर शिखर पर, जहाँ सिलहली गैल।
पांव न टिके पपीलका, तहाँ खलकन लादै बैल॥

संत कबीर का स्थान उस चोटी पर है जहां जाने का मार्ग फिसलन भरा है। उस रास्ते में चींटी के भी पैर नहीं टिकते। लेकिन खलकन-अधकचरे लोग वहां बैलों पर बोरे लादकर पहुंचना चाहते हैं।

संत कबीर की बानियों में 'को ब्राह्मन को शूद्रा' तथा 'तू बाम्हन मैं कासी का जुलाहा' अथवा 'पांडे निपुन कसाई' या 'जो तोहरा को ब्राह्मण कहिये, तो काको कहिये कसाई'—ऐसे वाक्यांश बहुतायत पाये जाते हैं जिनके आधार पर कुछ लोग मान लेते हैं कि कबीर ब्राह्मणों के प्रति घृणा के भाव रखते थे। ऐसा निष्कर्ष वे लोग निकालते हैं जो विप्रवादी हैं या जिन्हें मध्ययुगीन सामंती समाज का अध्ययन ठीक से नहीं है। कबीर बानियों, विशेषतः कबीर-बीजक के गम्भीर अध्ययन के पश्चात यह स्पष्ट हो जायेगा कि कबीर जितने ऊंचे विरक्त संत थे शायद उससे कहीं अधिक समाजशास्त्री थे। इसीलिए अपने युग—जिसे 'रामचरित मानस एवं पुराणों' में कलियुग का नाम दिया गया है—की सामाजिक संरचना एवं तत्कालीन शोषण तंत्र की विधि व्यवस्था का अनुभवजनित विशेष ज्ञान उन्हें था।

संत कबीर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं मानसिक शोषण के खिलाफ जनजागरण आन्दोलन का बीजारोपण 15वीं सदी में कर गये थे जिसे कार्ल मार्क्स ने 19वीं सदी में रूस में चलाया था। मार्क्स की क्रान्ति हिंसात्मक थी परन्तु कबीर की क्रांति अहिंसात्मक और प्रेम पर आधारित थी। मार्क्स की क्रांति से रूस में सामाजिक और सत्ता परिवर्तन तो हुआ था किन्तु 20वीं

सदी पार करने के पहले ही सिद्धान्त मृत घोषित हो गया। संत कबीर का शोषणमुक्त तथा भाईचारे पर आधारित समाज की कल्पना भारत के संविधान में जीवन्त है। इसके अतिरिक्त विश्व के स्तर पर विश्व मानवाधिकार संगठन का मानवोचित कार्यक्रम संत कबीर के विचारों से अनुप्राणित है, इसमें कोई संशय नहीं है। दुनिया भर के बुद्धिजीवी संत कबीर से पांच सौ साल बाद वह सब सोच पाये।

इसमें दो राय नहीं कि संत कबीर ने वेद, पुराण, कुरान आदि धर्मशास्त्रों को अपने परख की कसौटी पर खरा नहीं पाया। अतः वे कहते रहे : 'नौधा वेद कितेब है, झूठे का बाना' (श. 113/6); 'ये कलि गुरु बड़े परपंची, डारि ठगौरी सब जग मारा; बेद-कितेब दोउ फन्द पसारा, तेहि फन्दे परु आप बिचारा (श. 32/7-8)'। उपर्युक्त वक्तव्य धर्मशास्त्रों की आलोचना मात्र नहीं है बल्कि मध्ययुग (कलियुग) में व्याप्त धार्मिक ठगी एवं धोखाधड़ी के लिए प्रयुक्त सामग्रियों की पहचान तथा शोषण-तंत्र पर कबीर का कठोर प्रहार है।

कबीर पूरे उत्तर भारत, यहां तक कि बलख देश तक की यात्रा किया करते थे इसीलिए सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं बौद्धिक शोषण के भिन्न-भिन्न रूपों को ठीक-ठीक जान सके थे। पंडितों एवं पुरोहितों के गोरखधंधे के साथ-साथ जनमानस को प्रलोभनों के जाल में फंसाने तथा उनके पीछे-पीछे भागने वाले भीड़-भाड़ का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

जेहि मारग गये पंडिता, तेई गई बहीर।
ऊँची घाटी राम की, तेहि चढ़ि रहे कबीर॥

(साखी 31)

अर्थात पुराणपंथियों के पीछे-पीछे जनसाधारण की भारी भीड़ चली जा रही थी लेकिन कबीर अपने राम की ऊंची घाटी पर चढ़कर विराजमान थे इसीलिए पंडितों के पीछे लगते भेड़ चाल को साफ-साफ देख पा रहे थे। 'ऊंची घाटी राम की' से तात्पर्य है धर्म-अधर्म एवं सत्यासत्य की अच्छी तरह परख पा लेने के पश्चात कबीर ऐसी ऊंची घाटी में पहुंच गये थे जहां न कुछ पाने की अभिलाषा होती है और न कुछ खोने का डर। लेकिन लुटते-पीटते जनसैलाब को देखकर कबीर के हृदय में करुणा जागती है और अपने आपको संबोधित करते हैं—

ये कबीर तैं उतरि रहु, तेरो सम्मल परोहन साथ।
सम्मल घटे न पगु थके, जीव बिराने हाथ॥

(साखी 32)

अर्थात ऐ कबीर! तुम नीचे धरती पर लोगों के बीच आकर रहो, तुम्हारे सम्मल-संबल (यात्रा के लिए खाद्य-सामग्री) तथा परोहन (याक या खच्चर—पर्वत पर सामान ढोने वाले पशु) तो सदा तुम्हारे ही साथ-साथ रहते हैं (विवेक-ज्ञान एवं लक्ष्य साधने का उद्देश्य तो तूने आत्मसात कर लिया है)। 'जीव बिराने हाथ' यानी जनमानस बिराने (पुराणपंथियों एवं धार्मिक ठगों के) हाथों फंसे हुए हैं, उनके उद्धार के लिए अपने सुख को छोड़कर लोगों के बीच में आकर रहो। इस कार्य से न तो तुम्हारा संबल घटेगा और न तुम्हारे पैर थकेंगे। कहा जाता है कि समाधि सुख एवं आत्मस्थिति में अपार सुख की अनुभूति होती है उसे ही छोड़कर संत कबीर आम जनता का उद्धार करने की बात कहते हैं। आम जनता में सब लोग सम्मिलित हैं जिनका शोषण हो रहा है। केवल दलितों का शोषण नहीं था। संत कबीर सारे समाज का उद्धार चाहते थे, चाहे दलित हो या ब्राह्मण। सबको अपना मानते थे। सबको प्यार करते थे। उनके शब्द पकड़ने एवं समझने लायक हैं—"घाव काहि पर घालो, जित देखो तित प्राण हमारो" (सा. 341) : किसको घाव दोगे, जहां देखो वहां हमारा प्राण प्यारा है। इस पंक्ति में संत कबीर ने मनुष्य क्या मानवेतर प्राणियों के लिए 'प्राण-प्रिय' का भाव दर्शाया है। सबको अपना प्राण अधिक प्यारा होता है लेकिन कबीर कहते हैं 'जित देखो तित प्राण हमारो'। अर्थात जहां तक देखता हूं वहां तक हमारा प्राण-प्रिय ही दीखता है। दुश्मन या गैर तो कोई नहीं यहां।

❑

व्यवहार वीथी

प्रेम : जीवन जीने की कला

एक युवती एक संत के पास जाकर निवेदन करती है कि मैं अपनी सास के कटु स्वभाव एवं दुर्व्यवहार से तंग आ चुकी हूं और अब मैं उनसे सदा के लिए छुटकारा चाहती हूं। आप मुझे कोई ऐसी युक्ति बतायें जिससे धीरे-धीरे उनकी मृत्यु हो जाये और कोई मुझ पर संदेह न कर सके। संत ने उसे एक पुड़िया देते हुए कहा कि इस पुड़िया में से थोड़ी-थोड़ी दवा दूध में डालकर रोज अपनी सास को देना। इससे दो महीने में उनकी मृत्यु हो जायेगी। शर्त इतनी है कि दूध देते समय तुम्हारे मन में अपनी सास के लिए अत्यंत आदर, प्रेम, श्रद्धा होनी चाहिए, तभी यह दवा काम करेगी और कोई तुम पर संदेह नहीं कर सकेगा।

दो माह के बाद वह युवती संत के पास आकर कहती है कि अब मेरी सास का स्वभाव बदल गया है। वह अब मुझसे बहुत प्यार करती है और अब मैं नहीं चाहती कि उनकी मृत्यु हो।

ऐसा क्यों हुआ कि जो युवती पहले अपनी सास की मृत्यु चाहती थी अब नहीं चाहती। वस्तुतः जब वह अपनी सास से प्रेम करने लगी, उनके प्रति श्रद्धा रखने लगी तब सास से उसको भी प्रेम मिलने लगा, उसका भी स्वभाव बदल गया। जब हम दूसरों से प्रेम करते हैं, उनके प्रति आदर-सम्मान, श्रद्धा का भाव रखते हैं तब वही सब लौटकर हमें भी मिलता है। प्रकृति का नियम ही है जो दिया जायेगा वही लौटकर मिलेगा। इसलिए हमें यह नहीं देखना चाहिए कि दूसरे लोग हमें क्या दे रहे हैं और हमारे साथ कैसा व्यवहार कर रहे हैं। हमें तो इस पर ध्यान देना है कि दूसरों को मैं क्या दे रहा हूं और उनके साथ कैसा व्यवहार कर रहा हूं।

हमें दूसरों को नहीं बदलना है किंतु स्वयं को ही बदलना है। स्वयं को बदलने का तात्पर्य है अपने कर्म, व्यवहार एवं स्वभाव को बदलना। आप भला तो जग भला—यह नियम सदैव याद रखना होगा। किसी के कहने से हम गलत नहीं हो जायेंगे, किंतु गलत कहने-करने से हम गलत होंगे। प्रतिक्रिया में पड़कर किसी से गलत बात-व्यवहार करना अपने को गलत सिद्ध करना है। किसी से गलत बात-व्यवहार पाकर प्रतिक्रिया में न पड़कर शांत रहना—अपनी सच्ची विजय है और अमृत द्वार में प्रवेश करना है।

महाभारत में महर्षि वेदव्यास कहते हैं—

नाहं शप्तः प्रतिशपामि किंचिद दमं द्वारं ह्यमृतस्येह वेद्मि।

अर्थात लोगों ने मुझे गाली दी है, गलत कहा है, परंतु बदले में मैं उन्हें थोड़ी भी गाली नहीं देता हूं क्योंकि मैं जानता हूं कि अपने मन को मार लेना, अपने आप पर पूर्ण संयम कर लेना ही अमृत के द्वार में प्रवेश करना है।

इस संदर्भ में एक उदाहरण अत्यंत प्रासंगिक एवं मननीय है। एक सज्जन को भरी सभा में कुछ लोगों ने गधा कह दिया। वे सज्जन चुप रहे। उन्होंने किसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। उनके साथियों ने उनसे कहा—आपने उन्हें कोई उत्तर क्यों नहीं दिया? सज्जन ने कहा—यदि मैं कुछ उत्तर देता, क्षुब्ध होता तो सचमुच में मैं गधा हो जाता और उनका गधा कहना सार्थक हो जाता। मेरा शांत रहना बताता है कि मैं गधा नहीं मनुष्य हूं।

यह कहना कि उसने मुझे ऐसा कहा, मेरे साथ गलत व्यवहार किया तब मैंने उसे ऐसा कहा और उसके साथ ऐसा व्यवहार किया, यदि वह मेरे साथ ऐसा व्यवहार न करता, मुझे ऐसा न कहा होता तो मैं ऐसा क्यों करता और कहता, अपनी कमजोरी प्रदर्शित करना है। यह ध्यान रखना चाहिए कि जिसके भीतर जो रहता है वही बाहर निकलता है। यदि हमारे अंदर गलत न होता तो किसी के लाख गलत कहने-करने से हमारे अंदर से गलत नहीं निकलता। सद्गुरु कबीर का यह कथन कितना सटीक है—जो रहे करवा सो निकरे टोंटी।

हम दूसरों से प्रेम पाना चाहते हैं और शिकायत करते हैं कि लोग हमें प्रेम नहीं देते, किंतु हम यह कभी जानने-समझने का प्रयास नहीं करते कि मैं दूसरों को

प्रेम दे रहा हूं या नहीं। जब हम स्वयं दूसरों को प्रेम नहीं देते तब हमें यह महसूस कैसे होगा कि लोग हमें प्रेम दे रहे हैं। जिसका मन-हृदय प्रेम से भरा होता है, उसे कभी महसूस नहीं होता कि लोग मुझे प्रेम नहीं देते। वह तो प्रेम में जी रहा होता है, फिर व्यर्थ शिकायत क्यों करेगा !

प्रेम में किसी प्रकार का प्रदर्शन एवं दिखावा नहीं होता। जहां प्रदर्शन एवं दिखावा है वहां प्रेम टिक नहीं सकता। इसी प्रकार जहां अपेक्षा एवं अहंकार है वहां भी प्रेम टिक नहीं सकता। अपेक्षा एवं अहंकार जितने ज्यादा होंगे उतनी ज्यादा शिकायत भी होगी। एक लेखक ने लिखा है—हमारे लिए किसी का प्रेम कम नहीं होता, किंतु हमारी अपेक्षा इतनी अधिक होती है कि हम उस प्रेम को महसूस नहीं कर पाते। निस्स्वार्थ, निष्काम और निरहंकार व्यक्ति ही दूसरों को सच्चा प्रेम दे सकता है। चूंकि उसके मन में किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं रहती, इसलिए उसे किसी से कोई शिकायत भी नहीं रह जाती।

प्रेम में पाने एवं लेने का भाव नहीं रहता, किंतु देने का ही भाव रहता है। प्रेम लेना नहीं केवल देना जानता है। प्रेम में दूसरों का ध्यान रखा जाता है कि मेरे द्वारा किसी को किसी प्रकार चोट न पहुंचे, किसी प्रकार का नुकसान न होने पाये। इस संदर्भ में निम्न प्रसंग अत्यंत मार्मिक है—एक बार स्वामी विवेकानंद अमेरिका जाने के लिए आज्ञा मांगने हेतु मां शारदा देवी के पास गये। शारदा देवी उस समय रसोई में काम कर रही थी। उन्होंने स्वामी विवेकानंद से चाकू मांगा। स्वामी जी ने चाकू लाकर दिया तब शारदा देवी ने कहा—बेटा, अब तुम अमेरिका जा सकते हो। स्वामी विवेकानन्द ने आश्चर्यचकित होकर कहा—मां, चाकू का अमेरिका जाने से क्या संबंध है? हुआ यह था कि जब शारदा देवी ने चाकू मांगा था और स्वामी विवेकानन्द ने चाकू लाकर दिया था तब चाकू की धार की तरफ वे स्वयं पकड़े थे और उसकी बेंठ को शारदा देवी की तरफ दिया था। इसको देखकर शारदा देवी ने कहा था कि जो स्वयं जोखिम उठाकर दूसरों के हित एवं सुविधा का ध्यान रखता है, उससे कहीं कभी भी किसी का नुकसान नहीं हो सकता। वह कहीं भी जा सकता है।

प्रेम की भाषा ऐसी भाषा है जिसे मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी समझते हैं। इसलिए शिकारी-बहेलिया को देखकर पशु-पक्षी भाग जाते हैं और संतों के निकट निर्भय होकर आ जाते हैं। जो काम जोर-जबर्दस्ती, बल-प्रयोग से नहीं हो सकता, वह प्रेम से बहुत सरलता से हो जाता है।

एक बछड़े को पिता-पुत्र दोनों बाहर सड़क से घर के अंदर ले जाना चाहते थे। पिता बछड़े को पीछे की तरफ से धकेलता और पुत्र आगे से गले में रस्सी बांधकर खींचता, परंतु बछड़ा अंदर जाना ही नहीं चाहता था। चारों पैर जमा कर खड़ा हुआ था। पिता-पुत्र दोनों पसीने से तरबतर हो गये, परंतु उन्हें बछड़े को अंदर ले जाने में सफलता नहीं मिल रही थी। इतने में एक छोटी बच्ची आयी और उसने बड़े प्यार से बछड़े के मुंह में अपनी एक अंगुली डाल दी। फिर बछड़ा उसके साथ पीछे-पीछे अंदर चला गया। प्यार का परिणाम ऐसा होता है।

प्रेम में न किसी प्रकार का छल-कपट रह जाता है, न दुराव-छिपाव और न अपने-पराये का भेद। प्रेम निष्छल और निष्कपट होता है। प्रेम में स्वार्थ नहीं रह जाता और जहां स्वार्थ होता है वहां प्रेम टिक नहीं पाता। यदि अपने मन में किसी के लिए ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और वैर भाव है तो समझना चाहिए कि अपने मन में प्रेम का अभाव है। क्योंकि विशुद्ध प्रेम में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा के लिए कोई स्थान नहीं होता।

कहते हैं कि कुरान में एक जगह आया है कि शैतान से घृणा करो। राबिया ने कुरान के इस वाक्य पर स्याही पोत दी थी। किसी ने इस बात के लिए राबिया को टोका कि उसने ईश्वरीय वाणी कुरान पर स्याही क्यों पोती है तब राबिया ने कहा कि मेरे मन में किसी के लिए घृणा रह ही नहीं गयी है, चाहे वह शैतान ही क्यों न हो। फिर मैं किसी से घृणा क्यों और कैसे करूं।

मन में जो भाव होगा, वही बाहर प्रकट होगा, घृणा होगी तो घृणा निकलेगी, प्रेम होगा तो प्रेम निकलेगा। एक मौलवी ने एक बार कबीर साहेब के पास संदेश

भेजा कि वह अमुक दिन अमुक समय उनसे मिलने के लिए आना चाहता है। उनके आने के थोड़ा पहले कबीर साहेब ने अपनी कुटिया के दरवाजे पर एक सुअर बंधवा दिया। मौलवी के आने पर कबीर साहेब ने स्वागत करते हुए कहा—आइये मौलवी साहब, तशरीफ रखिये। दरवाजे पर सुअर बंधा देखकर मौलवी ने कहा—लाहौल बिला कूबत। कबीर साहब आपने दरवाजे पर यह हराम क्यों बांध रखा है। कबीर साहेब ने कहा—मौलवी साहब! अब तक तो हराम भीतर था, अब वह बाहर आ गया।

किसी से मन न मिलने पर उससे अलग हो जाना तो ठीक है, परंतु उसके लिए मन में घृणा-द्वेष रखना ठीक नहीं है। किसी के लिए घृणा-द्वेष रखने से अंततः अपना ही नुकसान होगा। किसी के लिए घृणा-द्वेष का भाव रखकर हम प्रसन्नता एवं सुखपूर्वक जीवन जी नहीं सकते।

प्रेम होने पर अनेक लोग एक साथ सुखपूर्वक रह सकते हैं, किंतु प्रेम न होने पर दो लोग भी एक साथ नहीं रह सकते। मजबूरीवश साथ रहना पड़े तो किसी के मन में प्रसन्नता नहीं रहेगी। दोनों का मन तनावग्रस्त एवं एक दूसरे के प्रति शिकायत से भरा रहेगा।

दूसरों को सच्चा प्रेम वही दे सकता है, जो खुद से सच्चा प्रेम करता है। जो स्वयं से सच्चा प्रेम नहीं कर सकता वह दूसरों से भी प्रेम नहीं कर सकता। स्वयं से प्रेम करने का अर्थ खुदगर्ज़, स्वार्थी, अहंकारी होना नहीं है, अपितु निष्छल, निष्कपट, विनम्र, निर्मान, निष्काम होकर ऐसा व्यवहार करना है, जिससे अपना मन सब समय प्रसन्नता से भरा रहे और दूसरों को भी प्रसन्नता-सेवा मिलती रहे। निष्छल, निष्कपट एवं प्रेम से भरा मन ही सब समय प्रसन्नता का अनुभव कर सकता है।

प्रेम केवल देना जानता है किंतु उसे यह याद नहीं रहता कि मैंने किसको कब क्या दिया है। जो इस हिसाब में लगा रहता है कि मैंने किसको क्या दिया और बदले में उसने मुझे क्या दिया, वह तो व्यापारी है। वह प्रेम को कभी समझ नहीं सकता। प्रेम कभी हिसाब-किताब नहीं रखता, वह तो केवल देता जाता है, देता जाता है।

प्रेम का वर्णन करते हुए एक संत ने लिखा है—इसके पास दूसरों की मदद करने के लिए हाथ होते हैं, दीन-दुखी, असहाय एवं जरूरतमंदों तक पहुंचने के लिए पैर होते हैं, उनके दुखों एवं जरूरतों को देखने के लिए आंखें होती हैं, उनकी आह, पीड़ा एवं दुखों को सुनने के लिए कान होते हैं और इसका द्वार सबके लिए सदैव खुला रहता है। जो कोई भी इसके द्वार पर आता है कभी खाली हाथ नहीं लौटता।

मदर टेरेसा ने कहा है—प्रेम हर समय, हर मौसम का फल है और यह हर हाथ की पहुंच के भीतर है। अर्थात प्रेम करने का कोई निश्चित समय नहीं है कि अमुक समय प्रेम करना चाहिए अमुक समय नहीं। यह तो हर समय हर किसी से हर जगह किया जाने वाला भाव है। प्रेम उस खजाने की तरह है कि इसे जितना खर्च करो, बांटते जाओ उतना ही बढ़ता जाता है, लेकिन आप इसे खर्च न करना, न बांटना चाहें तो यह घटता चला जायेगा और एक दिन पूरा समाप्त हो जायेगा। प्रेम करके ही प्रेम को समझा जा सकता है और प्रेम करने से इसकी क्षमता और ताकत बढ़ती चली जाती है।

यह ध्यान रखने जैसी बात है कि प्रेम मस्तिष्क से नहीं निकलता, किंतु हृदय से निकलता है। जिसका दिल जितना साफ, निष्काम और अनासक्त होगा उससे उतना ज्यादा प्रेम निकलेगा और वही कह सकेगा—घाव काहि पर घालों, जित देखों तित प्राण हमारो। तथा—सब तेरे तू सबन का काको जानि रिसाय। जब तक हमारा मन एवं दिल निर्मल और निष्काम नहीं होगा तब तक हम किसी से सच्चा प्रेम नहीं कर सकते, प्रेम का दिखावा एवं नाटक भले कर लें। प्रेम पाने वाले को तृप्त-खुश करता है, इसे देने वाला भी भीतर से भरा-भरा और तृप्त रहता है। घृणा, नफरत, द्वेष, ईर्ष्या में हम एक दिन भी प्रसन्नता से नहीं जी सकते, किंतु प्रेम में पूरा जीवन प्रसन्नता से जी सकते हैं। प्रेम जीवन का वह सौदा है, जिसमें सिवा लाभ के कभी घाटा नहीं होता।

—धर्मेन्द्र दास

मानव का मानव बनना ही उसका चरम एवं परम लक्ष्य है

लेखक—डॉ. रणजीत सिंह

पशुता का त्यागकर "मनुष्य को मनुष्य बनाना ही मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिए।" वेदों में भी कहा गया है कि 'मनुर्भव जनया दैव्यं जनं' अर्थात मनुष्य बनो और दिव्य जन समाज पैदा करो। समाज अच्छाई से चलता है, न कि बुराई से। अच्छाई जहां उत्थान की ओर ले जाती है, वहीं बुराई पतन की ओर। दुनिया में कोई भी ऐसा इंसान नहीं होगा जो अच्छाई को नहीं चाहेगा, सिर्फ अपवादों को छोड़कर।

गुरु नानक देव एक बार किसी गांव में गये तो वहां ग्रामवासियों ने उनका बहुत स्वागत किया। वहां से चलते समय उन्होंने ग्रामवासियों को आशीर्वादस्वरूप कहा कि उजड़ जाओ। वहां से दूसरे गांव में गये तो वहां लोगों ने बहुत गलत व्यवहार किया तो नानकजी ने कहा आबाद रहो। इस पर उनके शिष्य मर्दाना ने कहा कि गुरुदेव! जिन ग्रामवासियों ने आपका खूब स्वागत किया उनको तो आपने उजड़ने का आशीर्वाद दिया लेकिन जिन ग्रामवासियों ने आपको बुरा-भला कहा, अपमानित किया उन ग्रामवासियों को आपने आबाद होने का आशीर्वाद दिया, इसका मतलब क्या है? तो नानक देव जी ने कहा कि जिनको मैंने उजड़ने का आशीर्वाद दिया वे अच्छे लोग जहां जायेंगे वहां अपनी अच्छाई फैलायेंगे जिससे समाज का भला होगा, लेकिन जिन ग्रामवासियों को मैंने आबाद रहो कहा वे बुरे लोग जहां जायेंगे अपनी गंदगी फैलायेंगे। जिससे समाज का बहुत बड़ा नुकसान होगा इसलिए इनका एक ही जगह पर रहना ठीक है। जैसे लोग गंदगी को फैलाने के बजाय एक ही जगह गड्ढे में दबाना ज्यादा पसंद करते हैं, नहीं तो गंदगी फैलने से बीमारियां फैलेंगी जिससे समाज का बहुत नुकसान होगा।

जब भी लोग एक दूसरे से मिलते हैं तो किसी अनजान आदमी के बारे में यही पूछते हैं कि फलां आदमी कैसा है और जब कोई कहता है कि बड़ा भला मनुष्य है तब लोग राहत की सांस लेते हैं। लेकिन जब लोग किसी को बुरा बताते हैं तब कहते हैं कि तब तो बहुत परेशानियां झेलनी पड़ेगी। पहले मनुष्य को स्वयं सत्पथ पर चलना चाहिए। फिर दूसरों को चलाने का प्रयास करना चाहिए।

हमें अपनी कथनी एवं अपने कार्य तथा व्यवहार में समन्वय स्थापित करना चाहिए। समाज का बुरा से बुरा व्यक्ति भी किसी को ठगने के लिए अच्छाई का ही लबादा ओढ़कर विश्वास दिलाने की कोशिश करता है, जिसे जनमानस में ढोंगी, धूर्त, पाखण्डी या बहुरुपिया कहा जाता है। बनावटी साधु भी जानते हैं कि अच्छाई, विश्वास व ईमानदारी का चोला ओढ़कर ही अज्ञानी, भोलेभाले मनुष्यों को ठगा जा सकता है। ऐसे लोग भेड़ की खाल में भेड़िये होते हैं। रावण ने भी सीता का अपहरण साधुवेश में ही किया था। संत शिरोमणि कबीर साहेब ने कहा है—

कथनी मीठी खांड़ सी, करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करै, विष से अमृत होय॥

अराजकता, अन्याय, अत्याचार, अश्लीलता, व्यभिचार, बलात्कार, लड़ाई, झगड़ा, दंगा-फसाद, नशा, निंदा, नफरत, वैर, विरोध, आपसी मनमुटाव, ईर्ष्या व डाह ऐसी प्रवृत्तियां हैं जिससे मनुष्य का मनुष्य पर से विश्वास उठता जा रहा है। उनके बीच में दूरियां बढ़ती जा रही हैं। जो समय सकारात्मकता के तहत अच्छे समाज के निर्माण में लगाते उसके स्थान पर नकारात्मकता के तहत समाज का विध्वंस कर रहे हैं। आज नफरत की लड़ाई इस चरम सीमा तक पहुंच चुकी है कि समूची मानव जाति को खतरा पैदा हो गया है। अच्छाई-बुराई की लड़ाई मानव उद्भव काल से ही चली आ रही है। जानवरों व पक्षियों में भी वर्चस्व की लड़ाई बदस्तूर जारी है।

हमें प्रत्येक क्षण दुष्कर्मों से तौबा कर शुभकर्मों को करना चाहिए क्योंकि शुभकर्म का फल शुभ व अशुभ का अशुभ होता है। अशुभ को स्थगित कर देना चाहिए लेकिन शुभ कार्य शीघ्रता से कर डालना चाहिए। कहा

भी गया है कि "शुभस्य शीघ्रं"। भारतीय संविधान की धारा 19 (1) अ के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है लेकिन ऐसी अभिव्यक्ति मानवीय हित, समाजहित व देशहित में होनी चाहिए न कि लड़ाई-झगड़े व दंगे-फसाद कराने के लिए। समाज में अमन-चैन का माहौल सदैव कायम रहना चाहिए। इसमें माहौल बिगाड़ने का अधिकार किसी को नहीं दिया जा सकता है। जिस समाज में अमनचैन, सुकून होता है वहां के लोग ज्यादा विकास करते हैं इसके विपरीत जहां का माहौल खराब होता है वहां विकास के सारे कार्य ठप पड़ जाते हैं।

विदेशों में वहां के नागरिक प्रत्येक कार्य देशहित में करते हैं इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि वे अपने देश से कितना प्यार करते हैं। जापान के नागरिक कभी हड़ताल नहीं करते। यदि करते भी हैं तो हड़ताल समाप्ति के पश्चात हड़ताल अवधि की भरपाई के लिए काम के घण्टे बढ़ा देते हैं। कभी हमारा देश सोने की चिड़िया कहा जाता था तथा विश्वसमुदाय का गुरु भी था क्योंकि योग, अहिंसा, दशमलव, शून्य, अंकप्रणाली, बीजगणित, रेखागणित, आयुर्वेद, ऋषि, महर्षि, मुनि, संत, संन्यासी, विरक्त, वैरागियों व साधुओं का प्रदाता था। इसका दर्शन इतना उच्चकोटि का है कि विदेशी भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते थे। भारत का अर्थ ही है भा-ज्ञान, रत-लगा हुआ अर्थात जो ज्ञान की खोज में लगा हुआ है उसे भारत कहते हैं। हमारे दर्शन से प्रभावित होकर सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आईंस्टीन ने कहा था कि गणित के क्षेत्र में हमें भारतीयों के योगदान को कभी नहीं भूलना चाहिए क्योंकि उन्होंने पूरे विश्व को गणना करने की तकनीक सिखाया। महात्मा गांधी के बारे में आइंस्टीन ने ही कहा था कि आने वाली पीढ़ियां शायद ही विश्वास कर पायें कि ऐसा हाड़-मांस का महामानव पृथ्वी पर विचरण करता था जिसने सत्य-अहिंसा के मार्ग पर चलकर भारतीयों को आजादी दिलाया।

मानव ने अपने भोग के खातिर मानव पर इतना अत्याचार किया है कि सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। सारी लड़ाइयां जर, जोरू व जमीन के लिए हुई हैं।

आज आवश्यकता है कि हम आपसी वैर, विरोध, कटुता, मनमुटाव, हिंसा, संघर्ष, नशा व नफरत को त्यागकर एक ऐसे स्वस्थ समाज का निर्माण करें जिसमें प्यार, संयम, सहनशीलता, सहानुभूति, भाईचारा, सेवा, विवेकशीलता, विनयशीलता, त्याग, तपस्या, सामाजिकता, नैतिकता, मानवीयता व सम्यक न्याय आधारित व्यवस्था होनी चाहिए ताकि धर्म की स्थापना हो तथा अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्भावना हो व विश्व का कल्याण हो। मनुष्य के विचारों में भले ही मतभेद हो लेकिन मानव-मानव में कतई मतभेद नहीं होना चाहिए। अगर मतभेद हो भी जाये तो मिल बैठकर उसका समाधान कर लेना चाहिए। हमारे प्राचीन मनीषियों ने भी आत्मकल्याण के साथ-साथ मानवीय कल्याण पर बल देकर कहा है कि—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुःखभागभवेत्॥

एकनाथ पहुंचे हुए संत थे। एक व्यक्ति ने यह बीड़ा उठाया कि वह संत एकनाथ को उत्तेजित कर देगा। संत एकनाथ साधना में बैठे थे। वह आदमी पहुंचा और उनकी पीठ पर जा बैठा और बैठा ही नहीं पीठ पर, घूसा भी मारने लगा। एकनाथ ने मुड़कर देखा और हंसकर कहा-अरे! तुम्हारे जैसा मित्र तो मुझे आज तक नहीं मिला। आज तक जो भी मित्र आते वे सामने से आकर मिलते। तुम पीछे से आकर मित्रता करने वाले व्यक्ति हो। मेरी पीठ में दर्द है। तुमने उसे जान लिया और उस जगह को ठोंक-पीटकर ठीक कर रहे हो। पहली बार की मित्रता में तुम्हारी कितनी अच्छी सेवा भावना है! तुम धन्य हो। जब ऐसी बात उस व्यक्ति ने सुना तो वह शरमा गया और पीठ से उतरकर संत के चरणों में आ गिरा।

प्रस्तुति-रमेश दास

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

जो मनुष्य चूहे के समान बिना हेतु किसी की भी वस्तुओं को काटने में लगा रहता है; जिसका स्वभाव ही दुष्टतापूर्ण है; उसे आज छोड़ो चाहे कल; चाहे थोड़ी हानि उठाकर छोड़ो चाहे अधिक हानि उठाकर छोड़ो उसे छोड़कर ही उपद्रव से बच पाओगे। दुष्ट का स्वभाव है बिना हेतु वैर करना और समाज में विषाक्त वातावरण तैयार करना। ऐसे दुष्टों से सदैव दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिए। जीवन का समय थोड़ा है। वह भी भागा जा रहा है। इसी में अपने मन के बंधनों को काटकर शांति में जीना है। इसलिए सारे विघ्नों को जीतकर यह काम करना चाहिए। न प्रेमी रहेंगे न वैरी रहेंगे और न अपना माना गया शरीर रहेगा। अतएव सारे विघ्नों को त्यागकर शांति में जीयो।

* * *

सबकी व्यवस्था करके तुम अपनी व्यवस्था नहीं कर सकते हो। तुम सबसे मुड़कर अपने मन को व्यवस्थित करो। दूसरा कैसा है, इसका संताप न धारण करो। तुम दूसरे के सुधार के ठेकेदार मत बनो। कोई विनम्रतापूर्वक तुमसे कुछ पूछे तो उसे बता दो जो उसके कल्याण की बात हो। इसके आगे तुम्हारा कोई वश नहीं है। तुम समाज-सुधार का अहंकार रखकर शांति नहीं पा सकते। आज तक तुम्हारे देखने में क्या यह लगता है कि समाज सुधरा है। समाज सर्वथा कभी नहीं सुधरता। व्यक्ति सुधरता है; और वही व्यक्ति सुधरता है जो सुधरना चाहता है। तुम स्वयं शीतल रहो। तृण-रहित अग्नि के समान शांत रहो। बस, तुम्हारा काम पूरा है।

* * *

पूरा दृश्यमान संसार कणों का प्रवाह है। उसी प्रवाह में चीजें बनती हैं, प्राणियों की देहें बनती हैं और साथ-साथ बिखरती हैं। इसलिए यहां किसी दृश्य-पदार्थ का मोह करना अविद्या है। जो मनुष्य सब समय अपने मन को बाहर से समेटकर अपने में लीन करता है, वही सुखी रहता है। सारे आध्यात्मिक साधक तथा शास्त्र एक स्वर से यही कहते हैं कि संसार असार है। अखबार वाले भी किसी बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति के मरने पर लिखते हैं, उन्होंने आज असार संसार का त्याग कर दिया।

* * *

यदि आप विरक्त साधु हैं और विरक्त शिष्य बनाकर साथ में रखते हैं, तो याद रखिए उनमें कोई विवेकी होगा, समर्पित होगा, और कोई शिथिल होगा। आगे चलकर उनमें कोई अहंकारी और स्वार्थी भी होगा। क्योंकि मनुष्य का मन बदल जाता है। ज्ञान-वैराग्य का आदर्श देखते हुए तथा उनकी चर्चा सुनते हुए भी कोई कुतर्की और विरोधी भी हो सकता है। फिर यदि आप स्वयं वैराग्य की रहनी में गहरे नहीं हैं तो उनके कलह में पड़कर आपका लक्ष्य छूट जायेगा। अतएव विरक्त शिष्य बनाकर समाज बांधने की झंझट में न पड़ें। यदि इस करुणा की झंझट लें, तो अत्यंत सहनशील हों, गलत लोगों को त्यागने तथा सामान्य को राग-द्वेष-रहित होकर निभाने में सक्षम हों, स्वयं पूर्ण शांत हों।

* * *

स्वावलम्बन मनुष्य का बहुत बड़ा बल है। शरीर को सदैव हलका रखे, मन दुनिया से छुड़ाकर रखे, निर्विकल्प-समाधि का अभ्यास करे और आत्मलीन होकर कालक्षेप करे। जो चारों तरफ से निर्मोह हो जाता है, वह अपने आप में लीन हो सकता है। बाहर का मोह भीतर प्रवेश नहीं होने देता। कम खाना, कम बोलना, कम देखना, लोगों से कम मिलना, व्यवहार कम रखना, थोड़ी वस्तुओं में निर्वाह लेना और सबकी वासना त्यागकर स्वयं शांत हो जाना ही जीवन का फल है।

* * *

मन के द्वारा जगत प्रतीत होता है, और जब मन शांत हो जाता है तब मेरे अपने आपका अस्तित्व-बोध होता है। स्वयं के अस्तित्व-बोध में रहने के लिए साधक को मन से ऊपर उठना पड़ेगा। जीवनपर्यंत मन

से काम लेना है। मन को व्यवहार में भी लगाना पड़ता है और मन से आत्म-चिंतन करना होता है; किंतु सर्वोच्च स्थिति है—मन को शांत कर स्थित रहना। इसको अमनी दशा कहते हैं। याद रखो, मन से ही सारा प्रपंच पैदा होता है और मन से प्रपंच काटकर निष्प्रपंच की स्थिति में जाने का रास्ता बनता है; किंतु अंतिम स्थिति है मन से नितांत ऊपर उठ जाना। संकल्प-शून्य की अवस्था ही निर्विकल्प समाधि है, और यही अंतिम स्थिति है।

* * *

जीवन का परम लाभ गहरी शांति है, शेष सारी उन्नति दिखावा है, नश्वर है, ऊपरी है। गहरी शांति प्राप्त करने का साधन अत्यंत सरल है, वह है सारी लौकिक कामनाओं तथा अहंकार का सर्वथा त्याग कर आत्म-शोधन में लग जाना। जीवन में माल-टाल एवं धन क्या है? सारे लौकिक धन का आधार शरीर है और वह कूड़ा-कचड़ा है, अपावन, जड़, अनात्म और विनश्वर है; फिर कौन-सा धन मालटाल होगा। वस्तुतः आत्मधन ही असली मालटाल है, और आत्मशांति जीवन का फल है। इसके लिए साधु-संगति, सेवा, विनम्रता, निष्छलता, निर्मानता, अहंकार-शून्यता, जड़ाध्यास-त्याग, जड़-दृश्य के मोह का त्याग आवश्यक है।

* * *

मन में पूर्ण प्रकाश है कि मेरा इस संसार में एक कण भी नहीं है। 'कुछ मेरा नहीं है' इस तथ्य का दृढ़ निश्चय जीवन का परम आनंद है। ऐसी दृढ़ स्थिति में ही मन निर्विकल्प होकर सुख-सागर होता है। मन ही संसार की अहंता-ममता करके विष का सागर एवं दुख का सागर बनता है, और मन ही पूर्ण निर्मान और निष्काम होकर शांति-सागर बनता है। जिसने अपने मन को सम्हालकर उसे निर्विकल्प होने का अभ्यासी बना लिया, वह हर क्षण मुक्त है।

* * *

चारों तरफ सब कुछ परिवर्तन के भंवर में फंसा हुआ काल-चक्र की चक्की में पिस रहा है। यहां किस वस्तु के स्थायित्व पर विश्वास किया जा सकता है? अपना मन हर क्षण सांसारिक दृश्यों से हटाकर आत्मा में ही लगाना चाहिए। क्योंकि आत्मा ही आत्मा के साथ है। यह शरीर आज-कल में जाने वाला है। इसके साथ इसकी सारी माया खो जायेगी। फिर इसमें मन क्यों लगाया जाये। स्वरूपस्थिति ही जीवन का सार है। उसी में सदैव रमना चाहिए। इसके लिए सारी सांसारिक आशाएं छिन्न कर देना चाहिए।

* * *

लोग मिलते हैं। उनसे बातें करनी पड़ती है। खान-पान-व्यवहार, शौच, स्नान तथा अन्य अनेक व्यवहार आते हैं। इन सब झमेलों में स्वरूप-विस्मरण का अवसर रहता है। साधक सब समय सावधान रहे। सारा व्यवहार क्षणिक है। लोगों का मिलन क्षणिक है। सारा संबंध ही क्षणिक है। इन क्षणिकाओं में अपने आपको मत भूलो। कुछ मेरे साथ रहेगा नहीं। जितना संबंध छुटता जाता है उतना हलका होता जाता है। जब शरीर छूट जायेगा तब पूरा हलका हो जायेगा। विदेहमुक्ति ही सब भार से रहित परम स्वतंत्र है।

* * *

तुम पूर्ण शुद्ध हो, परंतु तुम्हें साथ के लोगों में कुछ लोग तुच्छ मानते हैं, मोही और अज्ञानी मानते हैं, तो इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ता है? इन जैसी किसी बात को लेकर तुम्हारे मन में क्षोभ नहीं आना चाहिए। तुम सब तृष्णा त्यागकर अपने में सुख से जीयो। दूसरों से तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है। तुम सब समय उद्वेगहीन, प्रतिक्रियाविहीन, ईंधनरहित अग्नि की तरह शांत रहो। तुम्हारे जीवन का प्रत्येक क्षण स्वरूपस्थिति में बीतना चाहिए। सब समय संतोष-रस का पान करना ज्ञानी का काम है। इस क्षणिक संबंध से क्यों आन्दोलित हुआ जाये। जो रहने वाला नहीं है उसको लेकर शांति क्यों भंग करे? शांति ही हमारा जीवन-प्राण है।

हम किसी से कम नहीं

लेखक—गुरुवेन्द्र दास

धन, विद्या, बल, राज, पद आदि की आवश्यकता जीवन-निर्वाह एवं शासन व्यवस्था के लिए है। इससे कोई इंकार नहीं कर सकता किन्तु इनका मद वैसा ही घातक एवं पातक है जैसे दूध में मट्ठा। कबीर साहेब ने कहा है—

नौ मन दूध बटोरि के, टिपके किया बिनाश।
दूध फाटि कांजी भया, हुआ घृत का नाश॥

कितना भी दूध इकट्ठा कर लें यदि उसमें नीबू की खटास पड़ जाये तो सारा दूध घृत से रहित हो जाता है। ऐसे ही जीवन में धन, विद्या, बलादि की आवश्यकता को कोई नकार नहीं सकता किन्तु इसमें जब मद रूपी मट्ठा पड़ जाता है तो ये सब जीवन को ही बरबाद कर देते हैं।

1. **धन मद**—धन मद के लिए नहीं मदद के लिए हुआ करता है। धन की आवश्यकता जीवन में हर किसी को हर जगह है चाहे वह गृहस्थ हो या विरक्त। सामान्य सी बात है शरीर है तो शरीर के लिए अन्न, वस्त्र, मकानादि की आवश्यकता होती है और यह सब धन के ही रूप हैं। यात्रा करनी है तो टिकट के लिए धन चाहिए। भूख लगी है तो भोजन के लिए धन चाहिए। ठण्डी, गरमी लगी है तो उसकी रक्षा के लिए धन चाहिए। बीमार पड़ गये तो इलाज के लिए धन चाहिए। परिवार, समाज व राष्ट्र की व्यवस्था को व्यवस्थित रखने के लिए धन चाहिए।

प्रारब्ध-पुरुषार्थ से धन इकट्ठा हो गया है तो उसे अपने जीवन निर्वाह के साथ-साथ जरूरतमंदों की भी सेवा में दिल खोलकर लगाना चाहिए। जो दिल खोलकर प्रसन्नतापूर्वक धन का उपयोग धर्म में करता है उसके लिए दिलवर (परमेश्वर) भी अपना दिल का द्वार खोल देता है। जो ऐसा नहीं करता उसके लिए ऋग्वेद में कहा गया है—

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी।[1]

अर्थात व्यर्थ का अन्न खाने वाला असावधान है। मैं सत्य कहता हूं वह अपना विनाश कर रहा है। जो न पूज्यों को खिलाता है और न मित्रों को प्रत्युत केवल स्वयं ही खाता है वह केवल पाप ही खाता है।

कितना सुन्दर विचार ऋषि देते हैं। आज के घोटालेबाजों व जमाखोरों को इससे शिक्षा लेनी चाहिए। यदि धन का केवल संग्रह ही किया गया, खाया-खिलाया न गया तो यह संग्रह विग्रह जरूर पैदा करेगा। सद्गुरु कबीर ने विग्रह से बचने के लिए कितना सुन्दर रास्ता बताया है—

खाय पकाय लुटाय ले, कर ले अपना काम।
चलती बिरिया रे नरा, संग न चले छदाम॥
जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानों काम॥

और भी—

सांईं इतना दीजिए, जामें कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

धन को दूसरे शब्दों में लक्ष्मी भी कहा जाता है। लक्ष्मी स्वभाव से चंचल है। स्थिर रहने वाली नहीं है। आज यहां तो कल वहां। धन जब आता है तो आदमी का सीना गजभर चौड़ा हो जाता है, खुशी से झूम उठता है, उछलता-कूदता है और जब जाता है तो सीना पकड़कर बैठ जाता है, रोता है। कबीर साहेब ने कहा है—

माया माथे सिंगड़ा, लम्बे नौ नौ हाथ।
आगे मारे सिंगड़ा, पाछै मारे लात॥

धन के सदुपयोग से जीवन जहां स्वर्गमय होता है वहीं दुरुपयोग से नरकमय हो जाता है। यदि आदमी सावधान न रहा तो धन से अनेक दोष भी हो सकते हैं। सद्गुरु विशाल देव ने कहा है—

1. ऋग्वेद 10/117/6।

धन में पंद्रह[1] दोष कहि, कविन कीन्ह परमान।
यहि ते त्यागें सुज्ञ जो, करै न अपनी हान॥

किसी ने कहा है—

माना तुम पैसे वाले हो, लाखों रुपये पैसे हैं।
किन्तु ठिकाना क्या उनका, जो चलते फिरते ऐसे हैं।
प्रकृति की ठोकर लगते ही, धरती तक हिल जाती है।
बड़ी-बड़ी सम्पत्ति अचानक, मिट्टी में मिल जाती है।

सच है इस नशे का भूत जिसके सिर पर सवार होता है उसे यह शैतान बनाकर ही छोड़ता है।

नशा दौलत का जिस पर आन चढ़ा।
सर शैतान पर एक और शैतान चढ़ा॥

कबीर साहेब ने इस नशे से बचने के लिए थोड़े में कितना सुन्दर कहा है *"ज्यों आवै त्यों फेरी हो"* अर्थात धन आवे तो उसे समाज सेवा में लगाता रहे।

सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी इसीलिए कहते थे कि धन धन नहीं है, जन धन है। धन है तो उसका उचित उपयोग करें, प्रमाद न करें। क्योंकि धन, धन के लिए नहीं, जन के लिए हुआ करता है। जन है तो धन का महत्त्व है। जहां जन नहीं वहां धन का कोई महत्त्व नहीं।

2. विद्या मद—धन के बाद जीवन में विद्या का होना भी जरूरी है। एक विचारक ने लिखा है—धन यदि व्यक्ति का पैर है तो विद्या उसकी आंख है। जिस प्रकार आंख के अभाव में व्यक्ति का जीवन अंधकारपूर्ण हो जाता है उसी प्रकार विद्या अर्थात सम्यक समझ के अभाव में जीवन दुखपूर्ण हो जाता है। विनय वह उद्यान है जिसमें हर प्रकार के सुंदर फूल खिलते हैं। जिसने इस विनय रूपी उद्यान को सींचा है उसने सबके मन को अपनी ओर खींचा है।

स्वामी शंकराचार्य ने कहा है कि वह विद्या नहीं है जिससे लोग विनय न प्राप्त कर विनय का अभिनय (नाटक) करने लगें बल्कि वह विद्या है जो मुक्ति में सहायक हो। 'सा विद्या या विमुक्तये'। कबीर साहेब ने कहा है कि पढ़ना-लिखना अच्छी बात है, पढ़ो-लिखो किन्तु पढ़ाई-लिखाई का अहंकार मत धारण करो, नहीं तो निश्चित ही बरबाद हो जाओगे।

पढ़ना पढ़ो धरो जनि गोई, नहिं तो निश्चय जाहु बिगोई।
पढ़े लिखे क्या कीजिए मन बौरा हो।
अंत बिलैया खाय समुझि मन बौरा हो॥

शिक्षा और विद्या प्रायः पर्यायवाची माने जाते हैं। ये दोनों शब्द वस्तुतः भिन्न हैं और दोनों के अर्थ भी भिन्न हैं। शिक्षा ज्ञान देती है और विद्या अनुभव देती है। किसी जमाने में तपोवनों में विद्या का अभ्यास कराया जाता था। जो अभ्यास करते थे वे विद्यार्थी कहलाते थे। तपोवन में जो विद्या मिलती थी वह चरित्र का निर्माण करती थी, संस्कार प्रदान करती थी। इसी से माना गया कि विद्यादान से बढ़कर और कोई दान नहीं। लेकिन आज उसका रूप बदल गया है।

अशिक्षित से शिक्षित होना अच्छा है लेकिन वह शिक्षा किस काम की जिसमें अंकुश ही न हो। तेज घोड़ा अच्छा माना जाता है किन्तु उस तेज घोड़ा में लगाम न हो तो वह आपके लिए मौत का पैगाम ला सकता है। इसी प्रकार विद्या में अंकुश न होने की वजह से कल्याणकारिणी विद्या विध्वंसकारिणी हो जाती है। ईशावाश्योपनिषद् के ऋषि ने इसीलिए कहा है—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भुय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥

अर्थात—अविद्या की उपासना करने वाले घोर अंधकार में प्रवेश करते हैं किन्तु जो विद्या की उपासना करते हैं, वे मानो उससे भी ज्यादा अंधकार में गिरते हैं।

विद्या का मद केवल भटकने का कारण होता है। आदमी को चाहिए कि उसे जो शक्ति प्राप्त है उसका उपयोग स्व-पर के कल्याण के लिए करे। जो प्राप्त विद्या का आचरण-प्रयोग न कर उसका दुरुपयोग करते हैं ऐसे लोगों के लिए जफर कवि ने बड़ा सुन्दर कहा है—

---

1. धन के पंद्रह दोष—1. चोरी, 2. हिंसा, 3. मिथ्याभाषण, 4. काम, 5. क्रोध, 6. दम्भ, 7. मद, 8. वैर, 9. अविश्वास, 10. ईर्ष्या, 11. स्त्री व्यसन, 12. मद्यनशादि, 13. जुवा, 14. नाचसिनेमा, 15. छल।

न हो कुछ भी अमल और हो किताबों से लदा।
जफर उस आदमी को, हम तसव्वुर बैल कहते हैं।

3. बल मद—बल का मद भी कम खतरनाक नहीं होता। कितने लोग बल के मद में इतने चूर रहते हैं कि उन्हें निर्बलों को सताने में ही मजा आता है। ऐसे लोग अपनी शक्ति का उपयोग समाज की सेवा में, रचनात्मक कार्य में नहीं करते अपितु विध्वंसक कार्य में करते हैं।

किसी ने कितना सुंदर कहा है—

माना तुम ताकत वाले हो, रखते हो बल हाथी का।
फिर भी करें भरोसा कैसे ताकत जैसे साथी का।
हाथी का घमंड भी छोटा सा अंकुश कर देता है दूर।
बड़े-बड़े ताकत वाले भी क्षण में हो जाते हैं चूर।
काम नहीं देता है बल और एक दिन आता है।
जब शरीर भी रोगी होकर, शक्तिहीन हो जाता है॥

जीवन में किसी का अहंकार साथ नहीं देता बल्कि परोपकार ही साथ देता है। कबीर साहेब ने कहा है—

दुर्बल को न सताइए, जाकी मोटी हाय।
बिना जीभ की हाय से, लोहा भसम होइ जाय॥
तिनका कबहुँ न निंदये, पाँव तले जो होय।
उड़ के आँख जो लागि हैं, पीर घनेरी होय॥

4. राज मद—इतिहास साक्षी है जिस-जिस राजा के सिर पर राजमद का भूत सवार हुआ वह विकास नहीं अपितु विनाश ही करता रहा। राजा का काम है प्रजा की रक्षा करना, उसके सुख-दुख का ध्यान रखना किन्तु यदि रक्षक ही भक्षक बन जाये तो प्रजा का क्या हाल होगा। सहज समझा जा सकता है।

राजा चाहे देश का हो, चाहे पार्टी, परिवार, समाज या किसी घर का ही क्यों न हो, पद आते ही सावधान न रहा तो उसका नशा चढ़ने लगता है। पद के लिए आदमी दूसरी पार्टी के उम्मीदवार की हत्या तक कर-करवा देता है। यह नशा दूसरों का तो नुकसान करता ही है खुद के विनाश का कारण बनता है। चीन के सुप्रसिद्ध संत लाओत्ज़े ने लिखा है—

1. एक महान राज्य पर शासन वैसे हो जैसे एक छोटी मछली को तलते हो। अर्थात लोग छोटी मछली को तलते समय जितनी सावधानी रखते हैं वैसे शासक को भी बड़ी सावधानीपूर्वक अपने को सबसे छोटा एवं सेवक समझकर देश की प्रजा को देवी-देवता मानकर उनकी यथाशक्ति सेवा करनी चाहिए।

2. कब लोग भूखे रह जाते हैं? जब शक्तिशाली शासकों द्वारा अत्यधिक टैक्स वसूला जाता है अतएव लोग भूखे रह जाते हैं।

हिटलर के राजमद का ही परिणाम है कि आईंस्टीन जैसे महान वैज्ञानिक को अपना देश जर्मनी छोड़कर अमेरिका जाना पड़ा। लेकिन वहां भी उनके साथ विश्वासघात किया गया। आईंस्टीन ने अमेरिका के राष्ट्रपति से कहा कि मैं परमाणु शक्ति का सूत्र बनाकर दे सकता हूं यदि उसका कल्याणकारी कार्य में प्रयोग किया जाये। जब राष्ट्रपति ने स्वीकार किया तो उन्होंने परमाणु ऊर्जा का सूत्र बनाकर दे दिया। किन्तु राष्ट्रपति ने उसका दुरुपयोग किया और उसने अपने वैज्ञानिकों द्वारा परमाणु बम बनवाकर जापान के नागासाकी और हिरोशिमा नगरों पर गिराया। जिससे वहां लाखों लोग मारे गये। इस घटना से आईंस्टीन को इतना संताप हुआ कि उन्होंने राजनेताओं से मिलना ही बन्द कर दिया।

5. जाति मद—जाति मद का अर्थ है अपने को जन्मजात कुलीन, श्रेष्ठ, पूज्य, बड़ा एवं पवित्र मानकर दूसरों को जन्मजात नीच, छोटा, अपवित्र, अछूत मानना। कम-वेश मात्रा में जन्मना ऊंच-नीच की भावना दुनिया के हर देश में है। इस जातिमद ने मनुष्यता के साथ भयंकर अपराध किया है। वैसे जाति का सीधा-सरल अर्थ होता है पैदा होना। मनुष्य अपने गुण-कर्मों के आधार पर बड़ा-छोटा होता है न कि जाति के आधार पर। महाभारत के वनपर्व के नहुषोपाख्यान में बड़ा सुन्दर चित्रण है। युधिष्ठिर कहते हैं—"हे महामति सर्प (नहुष)! यहां जाति का अर्थ मनुष्यता से है। ब्राह्मणादि रूढ़ वर्णों का आपस में इतना मिश्रण हो गया है कि उनकी अलग से परीक्षा करना कठिन है। क्योंकि सभी वर्ण एवं जातियों की स्त्रियों से सभी वर्ण एवं जातियों के पुरुषों ने बच्चे पैदा किये हैं। इसलिए तत्त्वदर्शी पुरुषों ने शील एवं सदाचार को ही प्रधान माना है, रूढ़ वर्ण एवं जाति को नहीं।[1]

1. महाभारत, वनपर्व 180/31-33।

सद्गुरु कबीर ने कल्पित जाति के आधार पर ऊंच-नीच व छुआछूत की जहरीली लता बोने वाले दंभियों को खूब फटकारा है। उनकी दृष्टि में मानव केवल मानव है। उनकी मौलिकता में कोई अन्तर नहीं है। एक ही समान नारी जाति व माता-पिता के रज-वीर्य के संयोग से सबकी उत्पत्ति व पैदाइश हुई है। फिर किस ज्ञान व समझ से अपने को ऊंच व दूसरे को नीच मानते हो। यहां कौन ब्राह्मण है और कौन शूद्र है। क्योंकि जन्म से तो सभी शूद्र (अशुद्ध) रहते हैं और मरने पर भी सबका शरीर शूद्र (अशुद्ध) हो जाता है। कृत्रिम जनेऊ धारण कर संसार में ऊंच-नीच का धंधा फैला रखे हो। सबके शरीर में एक ही प्रकार के हाड़-मांस व रक्त हैं तथा सबका शरीर मल-मूत्र की पिटारी है। कबीर साहेब कहते हैं राम में रमो, आत्मचिंतन करो। यहां न कोई हिन्दू है न कोई मुसलमान (तुरुक), सभी हैं इंसान।

एकै जनी जना संसारा, कौन ज्ञान से भयो निनारा।
जन्मत शूद्र मुये पुनि शूद्रा, कृतम जनेऊ घालि जग धंदा।
एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गुदा।
एक बुंद से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा।
कहहिं कबीर राम रमि रहिये, हिन्दू तुरुक न कोई।

6. उपसंहार—इसी मद कि "हम किसी से कम नहीं" के कारण आज यदि आदमी को किसी से खतरा है तो वह सिर्फ आदमी से है।

जिन-जिन लोगों ने अपनी स्वेच्छाचारिता एवं मनमानीपन पर विश्वास किया उसे नरक ही जाना पड़ा। 'जिन्ह जिव कीन्ह आपु विश्वासा, नरक गये तेहि नरकहि बासा' (बी. श. 43)। आदमी की अदालत में माफ किया जा सकता है लेकिन कुदरत (प्रकृति) की अदालत में किसी को क्षमा नहीं किया जाता। कर्म का फल मिलता अवश्य है। देर भले हो लेकिन अंधेर नहीं होता। 'कर्मों का तो मिलेगा फल, आज नहीं तो निश्चय कल।' मद में चूर आदमी क्रूर हो जाता है। कब क्या कर दे, क्या बोल दे, कोई भरोसा नहीं रहता है। प्रमादी आदमी को यह भी नहीं पता होता कि हमें भी काल अपने गाल में लेने के लिए हमारे पीछे-पीछे चला आ रहा है। किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

क्रूर काल रूपी यह अजगर, है बैठा मुंह फैलाए।
पता नहीं यह बैरी जग में, किसको कब खा जाए॥

धन, पद, मान, प्रतिष्ठा पाकर क्या फूले-फूले घूमते फिरते हो। तुम्हारे शरीर के दसों दरवाजे तो नरक से भरे हैं मानो तुम्हारा शरीर गंदगी का जहाज ही है। तुम्हारे बाहर के नेत्र फूटे ही हैं और भीतर के विवेक-विचार के नेत्रों से भी तुझे कुछ सुझाई नहीं देता। काम-क्रोध एवं तृष्णा में पड़कर मतवाले होकर बिना पानी के डूब मर रहे हो। जिस शरीर का तुझे इतना अहंकार है एक दिन इसे या तो जला दिया जायेगा या मिट्टी में गाड़ दिया जायेगा और यह कीड़े-मकोड़े, सियार, कुत्ते, कौवे आदि का भोजन होगा। इस शरीर की इतनी ही बड़ाई है। दुनिया के चकाचौंध में मुग्ध ऐ पागल! तू सावधान नहीं होता है। देख तुझसे काल दूर नहीं है। इस शरीर को बचाने का चाहे करोड़ों उपाय कर लो अंत में तो यह मिट्टी में मिलेगा ही। आत्माराम के भजन बिना सारे सयाने (प्रमादी) काल के गाल में समा गये।[1] जीवन के सारे ऐश्वर्य या तो जीते-जीते या फिर आंख ढपते ही शून्य हो जाने वाले हैं यह जानकर भी आदमी उसके पीछे पागल है।

सब ऐश्वर्य नास्ति की माहिं, जाके पीछे जिव बौराही।

जिस चीज का आदमी को बड़ा मद रहता है वे सब एक दिन ऐसे छूट जाते हैं जैसे सांप से केंचुली। कोई साथ नहीं देता न धन, न बल, न विद्या, न कोई पद। भागवतकार कहते हैं सारे प्रमादों को छोड़कर देखो काल रूपी अजगर सबको ग्रस रहा है।[2] इसलिए उदार हृदय वाले, सुन्दर मन वाले और द्वेषरहित बनो तथा एक दूसरे से ऐसा व्यवहार करो जैसे गाय अपने नवजात बछड़े से करती है।[3] सार यह है आत्मचिंतन से ही जीवन में शांति मिल सकती है। अतः सारे प्रमादों को छोड़कर आत्मचिंतन में लगें यही शांति का मार्ग है।

---

1. बीजक, शब्द 72।
2. अप्रमत्त इदं पश्येत ग्रस्तं कालाहिना जगत।
3. सहृदयं सोमनस्यमविद्वेषं कृणोमिवः।
अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्नया॥ अथर्ववेद 3/30/1॥

बीजक चिंतन

धर्म के नाम पर हत्या करना निंदनीय है

शब्द-83

भूला बे अहमक नादाना, जिन्ह हरदम रामहिं ना जाना॥ 1
बरबस आनि के गाय पछारी, गरा काटि जिव आपु लिया॥ 2
जीयत जीव मुर्दा करि डारे, ताको कहत हलाल हुआ॥ 3
जाहि माँसु को पाक कहत हो, ताकी उत्पति सुन भाई॥ 4
रजो-बीर्य से माँस उपानी, सो माँस नपाकी तुम खाई॥ 5
अपनी देखि कहत नहिं अहमक, कहत हमारे बड़न किया॥ 6
उसकी खून तुम्हारी गर्दन, जिन्ह तुमको उपदेश दिया॥ 7
स्याही गई सफेदी आई, दिल सफेद अजहूँ न हुआ॥ 8
रोजा बाँग निमाज क्या कीजै, हुजरे भीतर पैठि मुवा॥ 9
पण्डित वेद पुराण पढ़ै सब, मुसलमान कुराना॥10
कहहिं कबीर दोउ गये नरक में, जिन्ह हरदम रामहिं ना जाना॥11

शब्दार्थ—बे=अरे, अबे। अहमक=जड़मति। नादाना=नादान, नासमझ। हरदम=हर सांस, हर प्राणधारी। बरबस=जबर्दस्ती, बलपूर्वक, व्यर्थ। पछारी= पैर बांधकर गिरा देना। हलाल=जायज, विहित। पाक= पवित्र। उपानी=पैदा हुआ। स्याही गई=काले बाल वाली जवानी चली गयी। सफेदी आई=उजले बाल वाला बुढ़ापा आ गया। रोजा=रमजान के महीने में नित्य दिन भर उपवास रहना। बांग=अजान, ईश्वर को पुकारना। निमाज=नमाज, मुसलमानों की प्रार्थना-पद्धति। हुजरे=हुजरा, कोठरी, उपासना करने का कमरा जो प्राय: मसजिद के पास होता है।

भावार्थ—अरे जड़मति नासमझ! वह गहरी भूल में है जो हर प्राणधारी को राम नहीं समझता॥ 1॥ बलपूर्वक गाय को घसीट लाया, उसके पैरों को बांध दिया और बे-रहम होकर उसके गले को रेतकर काट डाला, इस प्रकार तूने खुद उसकी जान ले ली॥ 2॥ जीवित प्राणी को मुरदा कर दिया और इसे कहता है कि यह जायज काम हुआ॥ 3॥ हे भाई! जिस मांस को तू पाक कहता है, जरा उसकी पैदाइश तो सुन॥ 4॥ वह मांस वस्तुत: रज और वीर्य से पैदा हुआ है, इसलिए वह नापाक है, परन्तु तूने उसे खा लिया॥ 5॥ हे जड़मति! तू इसे क्यों नहीं कहता कि यह बेहद बेरहमी है और गंदी चीज खाना है। तू कहता है कि हमारे बड़ों का यह आदेश है तथा उन्होंने ऐसा किया है॥ 6॥ परन्तु ध्यान रहे, जिन्होंने तुम्हें ऐसा उपदेश दिया है इस हत्या का पाप उन पर भी जायेगा और एक दिन तुम्हारी भी गरदन कटेगी॥ 7॥ स्याही चली गयी, सफेदी आ गयी, परन्तु तुम्हारा दिल तो अभी भी सफेद नहीं हुआ॥ 8॥ ऐसे बेरहमी का काम करने वाले के लिए रोजा रहना, बांग पुकारना तथा नमाज पढ़ना क्या मतलब रखता है! प्रार्थना की कोठरियों में बैठकर मरने से भी क्या लाभ होगा!॥ 9॥ कबीर साहेब कहते हैं कि पंडित लोग वेद-पुराण पढ़ते हैं और मुसलमान लोग कुरान पढ़ते हैं; परन्तु जिन्होंने हर प्राणधारी को राम नहीं समझा और जीव हत्या करते रहे तथा उसे धर्म बताते रहे, वे सब नरक में जायेंगे॥ 10-11॥

व्याख्या—जो धार्मिक कहलाने वाले लोग ईश्वर की प्रार्थना करते हैं और जीवों की हत्या करते हैं, कबीर साहेब कहते हैं कि यह उनकी भूल है, जो हर प्राणी को ईश्वर नहीं समझते हैं। यदि देहधारी जीवों को हटा दिया जाये तो राम-रहीम का क्या मतलब होगा! क्या इन देहधारी जीवों के अलावा कोई राम-रहीम है! और इनके साथ रहमदिली के व्यवहार के अलावा कोई पूजा-उपासना है! प्रत्यक्ष राम-रहीम पर छूरी चलाना और शून्य में राम-रहीम पुकारना हद दर्जे की नासमझी है।

लोगों की अक्ल तो देखो! ये ईश्वर के भक्त ईश्वर के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने के लिए मूक प्राणधारियों को लाकर, उनके पैरों को बांधकर और उन्हें गिराकर उनके गले पर छूरी रेतते हैं और इसके साथ निहायत रहम करने वाले रहीम का नाम लेते हैं। भला, रहम करने का स्वभाव वाला बेरहमी के काम से खुश होगा! क्या ऐसा भी ईश्वर हो सकता है जो मासूम जानवरों की हत्या करने से खुश हो! यह ईश्वर की व्याख्या क्रूर शैतान में

क्यों कर रहे हो! जीव-हत्या तो हराम का काम है, यह हलाल कैसे हो गया! इसे जायज कहें, धर्मानुकूल कहें तो अधर्म किसे कहें! यह अन्धविश्वास कि किसी जीव की हत्या करने से कोई देव या ईश्वर खुश होता है घोर जंगलीपन है और साथ-साथ इसके नाम पर मांस खाने का लोभ है। आज के विज्ञान-युग में भी आदमी जंगलीपन से छूट नहीं पाया है। अनपढ़ ही नहीं, पढ़े-लिखे लोग भी घोर अन्धविश्वासी हैं। सभ्य और शिक्षित होने की डींग मारने वाला आदमी अभी भी मानो पत्थर-युग में है।

किसी देवता या ईश्वर का नाम लेकर जीव-हत्या करने से उसका मांस कैसे पवित्र हो गया! मांस कैसे बनता है इसे कौन नहीं जानता। रज-वीर्य से मांस बनता है। लोग रज और वीर्य को कितनी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। पेशाब के कतरे को कितना नापाक माना जाता है! परन्तु उसी पेशाब से बना मांस पाक कैसे हो गया! और फिर मांस का वर्तमान स्वरूप भी गन्दा है। इस कारण पेशाब पर न भी ध्यान दें तो कार्यरूप मांस स्वयं गन्दी चीज है।

लोग कितने जड़मति हैं! वे स्वयं अपनी आंखों की देखी बातों पर विश्वास नहीं करते, कहते हैं कि हमारे पूर्वजों ने ऐसा फ़रमान किया है और उन्होंने खुद ऐसा किया है। हमारे पूर्वजों ने जो कुछ कहा या किया है वह सब जायज नहीं हो जायेगा। हमें यह देखना पड़ेगा कि हम जो करने जा रहे हैं वह उचित है कि अनुचित। कहा जाता है कि हमारे पूर्वज इब्राहिम ने ईश्वर के नाम पर अपने पुत्र की कुर्बानी की थी। तो वहां बेटा न कटकर एक दुम्मा भेड़ा कटकर गिर गया।[1] यह कथन ही कपोलकल्पित है। जब बेटे को छूरी से काटा जायेगा तब बेटा ही कटेगा, वहां दुम्मा भेड़ा कैसे कट जायेगा। यदि यह ठीक है और अपने पूर्वजों की लीक पर चलना है तो लोग अपने बेटे की कुर्बानी करें और वहां अपने आप दुम्मा भेड़ा कट जाये तो बात मान ली जाये। किसी ने कहा है—

जो तू दावा करे दावा मुसलमानी करे।
अपने बेटे की खुदा के नाम कुर्बानी करे॥

वस्तुतः कुर्बानी तो किसी की भी नहीं करनी चाहिए। कुर्बानी करनी चाहिए अपने मन के मोह की। कुर्बानी का असली अर्थ है अहंता-ममता का त्याग। जीव-हत्या करने वाले तथा जीव-हत्या का आदेश देने वाले दोनों अपराधी हैं, परन्तु धर्म के नाम पर जीव-हत्या करने वाले तो घोर अपराधी हैं।

लोगों के काले बाल उजले हो जाते हैं, परन्तु यदि उनके मन नहीं उजले हुए तो बाल उजले होने से क्या हुआ! यदि आदमी में प्राणियों के प्रति दया-रहम का भाव एवं बरताव न आये तो उसका शारीरिक बुढ़ापा होने से क्या हुआ। मनुष्य का मन वृद्ध होना चाहिए। अगर दिल पाक नहीं है तो रोजा, बांग और नमाज बेकार हैं। जिसका दिल बेरहम है वह धार्मिक क्रियाकांड एवं बाह्याचार करके क्या फल पायेगा! घण्टों प्रार्थना की कोठरी हुजरा में बैठकर इबादत करना बेकार है, अगर दिल में दया नहीं है। "हुजरे भीतर पैठि मुवा" यह तो प्रार्थना की कोठरी में बैठकर केवल जड़मति होना है।

कबीर साहेब कहते हैं कि मैं केवल मुसलमानों को नहीं, किन्तु सबको कहता हूं। हिन्दू पंडितों को भी देखता हूं कि वे वेद-पुराण पढ़ते हैं और भी अपने अनेक धर्मग्रन्थ पढ़ते हैं, मुसलमान लोग कुरानशरीफ तथा अन्य अनेक किताबें पढ़ते हैं। यह सब ठीक है।

---

1. यह कथा बाइबिल में लोक कहावत से हटकर इस प्रकार है— पुरानी बाइबिल के उत्पत्ति-प्रकरण के 22वें अनुच्छेद में लिखा है कि ईश्वर ने इब्राहिम की परीक्षा लेने के लिए उसको आज्ञा दी कि तुम अपने पुत्र इसहाक की होमबलि करके चढ़ा, अर्थात उसकी कुर्बानी कर। जब इब्राहीम ने परमेश्वर की आज्ञा मानकर और सूखी लकड़ियों पर इसहाक के हाथ-पैर बांधकर लेटा दिया और छूरी निकाल उसका वध कर उसकी लाश का हवन करना चाहा, तो परमेश्वर ने आवाज देकर रोक दिया और कहा कि तुम्हारी परीक्षा पूरी हुई। इब्राहीम ने सिर उठाकर देखा तो वहां झाड़ी में एक भेड़ा उलझा है। उसने उसको लाकर उसकी परमेश्वर के नाम पर होमबलि की। उपर्युक्त कहानी ऐतरेय ब्राह्मण के शुनःशेप की कथा की याद दिलाती है। जिसमें अजीगर्त ब्राह्मण ने राजा हरिश्चन्द्र से कुछ गायें लेकर अपने पुत्र शुनःशेप का वध कर उसका हवन करना चाहा था और शुनःशेप के करुण-क्रंदन पर विश्वामित्र ने उसे बचाया था। यह कथा संक्षिप्तः कबीर दर्शन, अध्याय 4 के 'स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्यसमाज' संदर्भ में दी गयी है।

धर्मग्रन्थ पढ़ना चाहिए। धर्मग्रन्थ पढ़ने का मतलब यही होना चाहिए कि हमारे ख्याल ठीक हों, विचार अच्छे हों, हमारे दिल में दया और रहम का राज्य हो। परन्तु सारे धर्मग्रन्थ पढ़ने के बाद यदि जबान और हाथों में छूरी है तो धर्मग्रन्थ पढ़ने का क्या मतलब है! कबीर साहेब के सामने हिन्दू और मुसलमान कहलाने वाले लोग थे, इसलिए इन दोनों के नाम उन्होंने लिये; परन्तु उनका कथन सार्वभौमिक है। साहेब कहते हैं कि वे सभी लोग नरक में जायेंगे जो हर प्राणी को राम-रहीम न समझकर उसके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। नरक की कोई अलग जगह नहीं है, मन की मलिनता ही नरक है और उसके परिणाम में जन्म-जन्मांतरों तक दुख पाना निश्चित है। जो दूसरों को दुख देने की आज्ञा देगा या स्वयं दुख देगा वह देर-सबेर दुख पायेगा। "जो सिर काटे आन कै, अपनो होय कटाय।"

सद्गुरु अभिलाष साहब

(एक श्रद्धाञ्जलि)

रचयिता—डॉ. अमरनाथ सिंह

किया प्रकाशित दुनिया में जिन्ह
पारख ज्ञान प्रकाश को।
नमन है बारम्बार उन्हें
सद्गुरु संत अभिलाष को॥

भक्त जनों के मंगलकारी
जन मानस हितकारी।
दीन-हीन मजलूमों के हित में
अतिशय उपकारी।
सर्वसमन्वय के पोषक औ
मानवता के परम पुजारी।
कथनी करनी रहनी में सम
सहज सरल स्वभाव को।
नमन है बारम्बार उन्हें
सद्गुरु संत अभिलाष को॥1॥

नहिं ऊंच-नीच नहिं घृणा-द्वेष
बस प्रेम की धार बहाया।
उच्चाभिमान का अहं भगा
औदार्य बड़ों में प्यार जगाया।
हीन भावना ग्रस्तों में भी
स्वाभिमान का बीज उगाया।
ऐसे उदार चेता हिरदय
आनन्द कन्द अभिराम को।
नमन है बारम्बार उन्हें
सद्गुरु संत अभिलाष को॥2॥

मानव धर्म एक है सच्चा
हर मानव की एक कहानी।
सत्य अहिंसा प्रेम का मारग
है जीवन कल्याणी।
जीवन में ही मुक्ति साधना
है उनकी ये अमृतवाणी।
आतमदर्शी परम विवेकी
समदरसी सुखधाम को।
नमन है बारम्बार उन्हें
सद्गुरु संत अभिलाष को॥3॥

जीवन के क्षण-क्षण में खुशबू
सच्चरित्र की भीनी।
गुरु कबीर की उक्ति अमर
जो उसे सही कर दीनी।
जीवन चादर ऐसे ओढ़ी
ज्यों की त्यों धरि दीनी।
श्रद्धाञ्जलि करता हूं अर्पित
महापुरुष अभिलाष को।
किया प्रकाशित दुनिया में जिन्ह
पारख ज्ञान प्रकाश को॥4॥

शंका समाधान

प्रष्टा—संजीव कुमार, नगरी, धमतरी, छ.ग.

1. **प्रश्न**—भक्ति-धर्म की कसौटी क्या है?

उत्तर—भक्ति-धर्म की कसौटी है सदाचार, नैतिकता, उज्ज्वल चरित्र, मन की निर्मलता, आत्मसंयम। सामान्यतः लोग नाम-जप, कीर्तन, पूजा-पाठ आदि को भक्ति कहते हैं, परंतु ये सब भक्ति नहीं, कर्मकांड हैं। सभी धार्मिक मतों में अनेक प्रकार के कर्मकांड प्रचलित हैं और सामान्य जनता के लिए इनकी भी आवश्यकता है, क्योंकि इन सबसे मन में कुछ सात्त्विक भावना आती है, परंतु ये भक्ति की कसौटी नहीं हैं, किंतु भक्ति की कसौटी है मन-वाणी-कर्मों पर संयम और उनकी निर्मलता।

भक्ति इष्ट के प्रति समर्पण एवं मन की कोमलता है। इष्ट-उपास्य चाहे प्रत्यक्ष हो चाहे परोक्ष यदि भक्त-उपासक का उसके प्रति सच्चा समर्पण है तो उसका मन कोमल होगा ही। भक्ति का अर्थ है अहंकार का विसर्जन। भक्ति और अहंकार साथ-साथ नहीं चल सकते। जिसका मन अहंकार रहित और कोमल होगा उसके मन में किसी के लिए किसी प्रकार का ईर्ष्या, घृणा, छल-कपट, द्वेष, वैर-विरोध का भाव होगा ही नहीं, क्योंकि सच्चा भक्त-उपासक सब में अपने इष्ट-उपास्य का ही रूप देखता है। यदि मन में किसी के लिए किसी भी प्रकार से ईर्ष्या, घृणा, द्वेष, वैर-विरोध है तो वहां भक्ति नहीं किन्तु मात्र भक्ति का दिखावा है।

इस संबंध में गोस्वामी तुलसीदास जी का एक दोहा अत्यंत प्रासंगिक है—

उमा जे राम चरण रत, विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, का सन करहिं विरोध॥

गोस्वामी जी शिवजी द्वारा पार्वती से कहलवाते हैं—हे पार्वती! जिसका मन काम, मद और क्रोध से रहित होकर राम (इष्ट) के चरणों में लीन है और जो प्राणिमात्र में अपने इष्ट का रूप देखता है वह किससे वैर-विरोध करेगा, क्योंकि किसी से वैर-विरोध करना अपने इष्ट से ही वैर-विरोध करना होगा।

अतः मन का राग-द्वेष, छल-कपट, वैर-विरोध, ईर्ष्या-घृणा से रहित निर्मल होना, जीवन का नैतिकता, सदाचार, उज्ज्वल चरित्र से पूर्ण होना ही भक्ति-धर्म की कसौटी है। मन की निर्मलता एवं पवित्र कर्म के बिना न कोई भक्ति काम आयेगी और न कोई धर्म काम आयेगा। सच्चा धर्म तो संयम और शील है। संयम और शील का अर्थ है जीवन की पवित्र रहनी। किसी भी मत का भक्त, उपासक, साधक हो वह अपने मत में प्रचलित कर्मकांड का पालन करते हुए जीवन को संयम, शील, पवित्र रहनी से युक्त बनावे तभी जीवन में भक्ति-धर्म की प्रतिष्ठा हो सकेगी।

2. **प्रश्न**—सद्गुरु कबीर ने कहा है—संतो सो सद्गुरु मोहिं भावै, जो आवागवन नसावै। क्या सद्गुरु किसी का आवागमन मिटा देते हैं?

उत्तर—जैसे किसी के घर में खजाना गड़ा हो, परंतु वह उसे न जानकर भीख मांगकर जीवन गुजर कर रहा हो, बड़ी गरीबी में जीवन जी रहा हो, किसी जानकार ने उससे कहा कि अरे! तुम्हारे घर में ही खजाना गड़ा है और तुम भीख मांग रहे हो। वह उसे साथ ले जाकर खजाना खोदकर दे देता है और उस व्यक्ति की गरीबी दूर होकर वह धनवान हो जाता है। बताने वाले ने अपने पास से कुछ नहीं दिया, उसी की चीज-धन का पता बताकर मानो उसे सब कुछ दे दिया। वैसे ही हम अज्ञानवश आवागमन के चक्कर में पड़कर भटक रहे हैं। गुरु ने हमें हमारे स्वरूप का बोध देकर कहा कि तुम स्वरूपतः सम्राट होकर विषयों की भीख मांगते क्यों भटक रहे हो और क्यों दीन-हीन बने हो। सद्गुरु द्वारा स्वरूप का बोध पाकर तथा बंधन-मोक्ष का कारण जानकर जब साधक बंधनदायी कर्मों का त्याग कर देता है और विवेक-वैराग्य पथ पर चलते हुए सब से निष्काम-अनासक्त हो जाता है तब उसका आवागमन समाप्त हो जाता है।

यदि कोई यह समझता है कि साधक-शिष्य के बगैर मेहनत-साधना के गुरु अपनी ओर से शिष्य का

आवागमन मिटा देता है तो यह केवल भ्रम एवं अतिशयोक्ति है। कोई गुरु कृपा एवं आशीर्वाद से किसी का आवागमन नहीं मिटा सकता। इसके लिए साधक को स्वयं साधना करना पड़ेगा।

गुरु का काम रास्ता बताना है और स्वयं उस रास्ते पर चलकर आदर्श प्रस्तुत करना है, रास्ता तो शिष्य-साधक को स्वयं चलना होगा तभी वह मंजिल तक पहुंचेगा। आवागमन क्या है, इसका कारण क्या है, निवारण का उपाय क्या है, आवागमन किसका होता है, कैसे छुट सकता है—इन सबका भेद बताना ही मानो गुरु द्वारा आवागमन का नाश करना है।

जैसे किसी क्षेत्र में निष्णात होने के लिए एक निर्देशक की आवश्यकता होती है वैसे गुरु के निर्देशन में साधना करके साधक आवागमन का नाश कर सकता है।

प्रष्टा—धर्मदास, कोटा, राजस्थान

1. **प्रश्न**—ध्यान और समाधि में क्या अन्तर है?

उत्तर—सद्गुरु कबीर ने सहज ध्यान और सहज समाधि कहकर दोनों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया है। ध्यान और समाधि एक है ही। ध्यान है मन का पूर्ण संकल्प-विकल्प रहित, निर्विचार हो जाना—ध्यानं निर्विषयं मनः। और यही समाधि है।

ध्यान और समाधि को अलग-अलग मानने पर अंतर इस प्रकार किया जा सकता है—नाद, बिन्दु, ज्योंति, गुरु या इष्ट का चित्र, श्वास आदि का आलंबन लेकर मन को उसमें एकाग्र कर लेना, उसके सिवा किसी अन्य का चिंतन न होना ध्यान है और चित्त का शून्य हो जाना, चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध हो जाना, समाधि है।

समाधि को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं—सम+आधि=समाधि। सम का अर्थ है शमन, समाप्ति और आधि का अर्थ मन की पीड़ा। जिस अवस्था में पहुंचकर मन की सारी जलन, पीड़ा, मनोव्याधि का शमन हो, उस अवस्था को ही समाधि कहते हैं। जब तक मन चलता रहेगा तब तक मन की पूरी जलन-पीड़ा समाप्त नहीं हो सकती। जब मन पूर्ण शांत, निर्विचार हो गया, कुछ भी याद नहीं रहा तब वहां कोई पीड़ा नहीं रही और कुछ भी याद न रहना, मन का पूर्ण शान्त हो जाना यही ध्यान है। इस प्रकार ध्यान और समाधि में कोई अंतर नहीं है।

2. **प्रश्न**—आत्मा को कैसे पहचानें?

उत्तर—आत्मा का अर्थ है स्वयं। यह सोचें कि सबका जानने-मानने वाला कौन है। वही तो आप हैं, वही आत्मा है। सामने दीवाल है। उसे देखकर यह ज्ञान होता है कि यह दीवाल है, परंतु उस दीवाल को कौन जान रहा है। दीवाल को जानने वाला कौन है? वही आप हैं, वही आत्मा है।

क्या कभी आपको यह संदेह होता है कि मैं हूं या नहीं हूं। सब पर संदेह किया जा सकता है, परंतु अपने आप पर संदेह नहीं किया जा सकता। यदि आप नहीं होते तो संदेह कौन करता? आप हैं तभी तो आप संदेह कर रहे हैं। तब आप हैं कौन? आप ही तो आत्मा हैं।

दृष्टि बहिर्मुख होने से हम बाहर की वस्तुओं को जानते हैं, उनका ही ज्ञान करते हैं, परंतु यह कभी जानने की कोशिश नहीं करते कि मैं कौन हूं? वस्तुओं की आवश्यकता किसको है? यह तो तभी होगा जब मन अंतर्मुख हो, अंतःकरण शांत हो, विषय-कामनाओं की ज्वाला से रहित, निर्भय, निश्चिंत तथा विषयों से वैराग्य हो।

3. **प्रश्न**—मन क्या है? क्या इसका स्वतंत्र अस्तित्व है?

उत्तर—देखे, सुने, भोगे हुए की जो छाप-संस्कार अंतःकरण में पड़ते हैं वही मन है। मन शरीर संबंध से जड़-चेतन के संयोग से बनता है।

जैसे जड़-तत्त्वों का या चेतन का स्वतंत्र अस्तित्व है वैसे मन का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। यदि इसका स्वतंत्र अस्तित्व होता तो ध्यान-समाधि, विवेक, वैराग्य द्वारा उसे शांत, संकल्पशून्य नहीं किया जा सकता।

—धर्मेन्द्र दास

ज्ञान को जियें

लेखक—विवेक दास

किसी ने एक संत से पूछा—गुरुदेव! दुनिया में सबसे सरल काम क्या है? और सबसे कठिन काम क्या है? संत ने कहा—बेटा, दुनिया में सबसे सरल काम उपदेश देना है और कठिन काम उस पर चलना है।

आज शिक्षा के युग में साहित्य और ज्ञान की अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं और लगभग सभी भाषाओं में उपलब्ध हैं। ज्ञान की बातें कहने वाले भी बहुत मिलते है। पढ़-सुनकर जानकारी हो जाना सहज बात है लेकिन इस जानकारी और ज्ञान की सार्थकता तब है जब वह आचरण में आये। आचरण के बिना ज्ञान शुष्क और निरस हो जाता है। इसीलिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—

करनी करे सो पूत हमारा, कथनी कथै सो नाती।
रहनी रहे सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी॥

(साखी ग्रंथ)

अर्थात—जो ज्ञान के अनुसार आचरण करता है वह हमारा पुत्र अर्थात नजदीक का है और जो केवल ज्ञान की बात कहता है वह नाती (बेटी का बेटा) है थोड़ा दूर का है, किन्तु जो ज्ञान की रहनी में रहता है वह मेरा गुरु है और मैं उन्हीं के साथ रहना पसंद करता हूं।

कहन्ता तो बहुते मिला, गहन्ता मिला न कोय।
सो कहन्ता बहि जान दे, जो न गहन्ता होय॥

(बीजक, साखी 80)

कहने वाले तो बहुत मिलते हैं किन्तु उस रहनी में रहने वाले बहुत कम मिलते हैं। सद्गुरु कहते हैं जो कहता तो है किन्तु उसके अनुसार जीवन नहीं जीता उनको जाने दो, उनकी परवाह न करो।

एक आदमी अनपढ़ और अज्ञानी है इसलिए वह अज्ञानजनित काम करता है लेकिन दूसरा आदमी ज्ञानी तो है किन्तु ज्ञान के अनुसार चलता नहीं है तो दोनों में अन्तर क्या है।

'आचारहीनः न पुनन्ति वेदाः'

आचरणहीन को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते।

ज्ञान की बातें कहते-सुनते हुए भी हमारे जीवन में सुधार क्यों नहीं होता? हम ज्ञान की बातों को जी क्यों नहीं पाते? मेरी समझ से इसके निम्न कारण हो सकते हैं—

1. **मोह की प्रबलता का होना**—जिसके जीवन में मोह की अधिकता होती है चाहे वह मोह घर, परिवार, पत्नी, बच्चे, मित्र, गुरु, शास्त्र, मत, पंथ, किसी के प्रति क्यों न हो वह ज्ञान की बातों का पूर्णतः आचरण नहीं कर सकता। क्योंकि जब भी मोह की बात सामने आयेगी उसका ज्ञान सूखे पत्ते की भांति उड़ जायेगा। मोह ज्ञान की यथार्थता को समझने नहीं देगा। सद्गुरु कबीर ने बड़ा ही सुन्दर कहा है—

कुल पशु गुरु पशु नारि पशु, वेद पशु संसार।
मानुष ताको जानिए, जाहि विवेक विचार॥

(साखी ग्रंथ)

कुल के मोही कुल पशु, गुरु के मोही गुरु पशु, नारी (कामवासना) के मोही नारी पशु, शास्त्रों के मोही वेद पशु, ये ज्ञान, विवेक-विचार को कैसे समझ सकते हैं। जो इनके मोह से ऊपर उठेगा वही विवेक-विचार सम्मत ज्ञान का अधिकारी होगा।

महात्मा बुद्ध मरणासन्न स्थिति में थे। अंतिम स्थिति थी लेकिन चेतना विद्यमान थी। उन्होंने आंखें खोली और देखा तो सभी खास लोग दिखे, किन्तु उनके संग सदैव रहने वाले, आनंद नहीं दिखे तो पूछा—"आनंद कहां हैं?" भिक्षुओं ने बताया कि 'वे अंदर कुटी में खूंटी पकड़कर रो रहे हैं।' महात्मा बुद्ध ने आनंद को बुलवाया और कहा—"आनंद! तुम क्यों रो रहे हो? मैंने जीवन भर यही उपदेश दिया है—'मोह छोड़ो, राग-द्वेष छोड़ो। सब कुछ अनित्य और अनात्म है और तुम मेरे ही शरीर में मोह करने लगे।' मोह की स्थिति में ज्ञान काम नहीं देता।

सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी हमेशा कहा करते थे—"अध्यात्म में ज्ञानी होने का अर्थ निर्मोह होना है।"

दूसरा उदाहरण है—

एक युवक राजा के यहां चाकरी करता था। एक दिन संयोगवश उसे रनिवास में जाना हुआ। वहां उसने रानी को देखा तो उसकी सुन्दरता देखकर विमोहित हो गया। वह जैसे-तैसे काम पूरा करके घर आया और खाट पर पड़ गया। पत्नी के बहुत पूछने पर उसने साफ-साफ बता दिया कि मैं आज रानी को देखकर मोहित हो गया हूं। वह मुझे मिलेगी तभी मैं जीवित रह सकता हूं, वरना मर जाऊंगा। यदि तुम मुझे जीवित देखना चाहती हो तो रानी से मिलने का कुछ जतन करो। पत्नी भोली-भाली थी, वह जाकर रानी से बात कह दी। रानी ने कहा—"यदि वह मुझसे मिलना चाहता है तो नदी के किनारे बैठकर मेरे लिए तपस्या करे।" वह युवक रानी के लिए तपस्या करने लगा। कुछ ही समय में आस-पास में उसकी प्रसिद्धि होने लगी और लोग उसके दर्शन के लिए आने लगे। बात राजमहल तक गयी। रानी समझ गयी। राजा से आज्ञा लेकर वह भी दर्शन के लिए गयी। उनके साथ अंग-रक्षक और दासियां भी आयीं। रानी सबको दूर छोड़कर अकेले ही उस युवक के पास गयी और कही—"तुम जिसके लिए तपस्या कर रहे हो मैं तुम्हारे सामने खड़ी हूं।" युवक ने आंखें बंद किये ही उत्तर दया—'देवी! अब तुम्हारी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मुझे असली रानी मिल गयी है। अब हाड़-मांस की रानी की आवश्यकता नहीं है।'

2. अहंकार—जिस व्यक्ति को रूप, जवानी, विद्या, पद-प्रतिष्ठा आदि का अहंकार हो जाता है, तो वह ज्ञान को नहीं जी पाता। वह भले ही ज्ञानी होने का दम्भ भरे, किन्तु ज्ञान से वह कोसों दूर बना रहता है। ज्ञान को जीने के लिए अहंकार का टूटना आवश्यक है।

रावण को चारों वेदों का प्रकाण्ड पंडित कहा जाता है किन्तु क्या यह कहा जा सकता है कि वह ज्ञानी था।

कहा जाता है जब जनक की सभा में अष्टावक्र गये तो उसको देखकर सभा के विद्वान हंसने लगे। उनको हंसते देखकर अष्टावक्र जी भी हंसने लगे। विद्वानों ने पूछा कि "आप क्यों हंस रहे हैं?" तो अष्टावक्र ने कहा—"पहले आप लोग बतायें कि आप लोग क्यों हंसे?" विद्वानों ने कहा—"हम इसलिए हंसने लगे कि ये आठ अंग के टेढ़े-मेढ़े राजा जनक को ब्रह्मज्ञान देने आये हैं।" अष्टावक्र ने कहा—"मैं तो समझता था कि यहां विद्वानों और ज्ञानियों की सभा होगी किन्तु यहां तो चमारों की सभा बैठी है, राजा जनक को ब्रह्मज्ञान देने के लिए। मैं इसलिए हंसा। क्योंकि चाम की परख चमार को ही होती है। आपने मेरे चाम को देखा है, मेरे टेढ़े-मेढ़े शरीर को देखा है, मेरे ज्ञान को नहीं देखा। नदी टेढ़ी होने से उसका पानी टेढ़ा नहीं होता। गन्ने के टेढ़े होने से उसका रस टेढ़ा नहीं होता। इसी प्रकार मेरे शरीर के टेढ़े होने से मेरा ज्ञान टेढ़ा नहीं है।" सुनकर सभी विद्वान लज्जित हो गये।

वास्तव में अहंकारी ज्ञानी नहीं हो सकता। इसीलिए कहा गया है—*"विद्या ददाति विनयम्।"*

3. दंभ—दंभ का अर्थ होता है दिखावा। जो व्यक्ति किसी प्रकार दिखावा में पड़ेगा वह ज्ञान का अधिकारी नहीं हो सकता। ज्ञान की स्थिति आने पर तो प्रदर्शन की बात होनी ही नहीं चाहिए। कितने लोग बिना किसी के कहे, बिना किसी के मन्तव्य जाने अपनी बात कहने लगते हैं और साबित करना चाहते हैं मानो हम ज्ञानी हैं, किन्तु ज्ञानी तो गुरु गंभीर होता है। आवश्यकता होने पर ही कुछ बोलता है—"कहहिं कबीर अर्ध घट डोलै, पूरा होय विचार ले बोलै। (बीजक, शब्द 70) अधूरा ज्ञानी ही बकबक करता है पूर्ण ज्ञानी विचारपूर्वक बोलता है।

4. ज्ञान का अन्तर्मन तक न पहुंचना—हम ज्ञान की बातें कहते, सुनते और जानते हैं किन्तु वह बाह्य मन तक ही रहता है अन्तर्मन तक नहीं पहुंचता। और यह ज्ञान जब तक हमारे अन्तर्मन तक नहीं पहुंचेगा तब तक वह हमारा स्वभाव नहीं बन पायेगा।

हमारे मन को हम मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—बाह्य मन और अन्तर्मन। बाह्य मन मन

का दस प्रतिशत है तो अन्तर्मन नब्बे प्रतिशत है। जो ज्ञान हम सुनते-समझते हैं यदि वह हमारे अन्तर्मन तक पहुंच गया तो वह हमारा स्वभाव बन जाता है। फिर हम सहज ही वैसे करने लगते हैं। जैसे हम गाड़ी चलाना सीख रहे हैं तो हमारा पूरा ध्यान स्टेरिंग, क्लच, ब्रेक, गेयर पर केन्द्रित होता है फिर भी हम भूल जाते हैं और हाथ-पैर का तालमेल नहीं बन पाता। हम अचानक ब्रेक दबा देते हैं या क्लच छोड़ देते हैं या क्लच दबा देते हैं। बहुत कोशिश करने के बाद भी हम संतुलित रूप से गाड़ी नहीं चला पाते हैं, किन्तु जब आदत में आ जाता है, अभ्यास करते-करते अन्तर्मन में संस्कार बैठ जाता है तब हम सहजता से गाड़ी चला लेते हैं फिर हमें ब्रेक, क्लच, गेयर आदि के लिए अलग से सोचना नहीं पड़ता। सब कुछ स्वाभाविक रूप से होता चला जाता है। इसी प्रकार जब ज्ञान की बातें हमारे अन्तर्मन में बैठ जायेंगी तो वे हमारे स्वभाव में आ जायेंगी और फिर हम जो कुछ करेंगे ज्ञान के अनुसार करेंगे।

ज्ञान को अन्तर्मन तक लाने के लिए उसका बार-बार श्रद्धापूर्वक अभ्यास चाहिए। बार-बार चिन्तन-मनन करते रहना होगा तब वह हमारे अन्तर्मन का ज्ञान हो पायेगा। हमारे जीवन का आमूलचूल परिवर्तन हो पायेगा।

संत-महात्मा जो उस ज्ञान दशा में पहुंचे हैं, हमेशा से कहते आ रहे हैं कि एकांत में बैठकर अपने गुण-दोषों की परख करो। ज्ञान के अनुसार अपने जीवन को बनाने का प्रयत्न करो और गलत चीजों से उदासीन होओ, उससे अपने आपको अलग करो। यही अभ्यास और वैराग्य है। सकारात्मक पक्ष को बार-बार दुहराना और नकारात्मक पक्ष से उदासीनता।

आचरणहीन कोरा ज्ञान किसी काम का नहीं है। ज्ञान की सार्थकता आचरण और रहनी सम्मत होने में है। जैसे चासनी के बगैर जलेबी या इमरती को कोई पसंद नहीं करता, वह बेकार है वैसे ही आचरण और रहनी के बिना ज्ञान की बातें बेकार हैं। दूसरों पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता। हां, कुछ समय के लिए जरूर उसका प्रभाव लगता है, वाहवाही भी हो जाती है, अन्ततः वह ज्ञान निस्तेज हो जाता है और ऐसे ज्ञान से आत्मिक संतुष्टि नहीं हो सकती। यदि हम ऊपर बताये मोह, अहंकार, दंभ को दूर करके अभ्यास और वैराग्य द्वारा ज्ञान को आत्मसात कर सकें तो वह ज्ञान चुम्बकीय हो जायेगा। इससे हम स्वयं दुखमुक्त होकर आत्मसंतुष्ट तो हो सकेंगे ही साथ ही और लोग भी हमसे प्रेरणा ले सकेंगे। और वास्तव में यही सरस ज्ञान होगा।

विन्या (आचार्य विनोबा भावे के बचपन का घर का नाम) के पिता श्री नरहरि भावे अत्यंत दयालु प्रकृति के थे। वे किसी-न-किसी जरूरतमंद को अपने घर में रखते थे। उन दिनों एक गरीब विद्यार्थी उनके घर में रहता था। घर में कभी कुछ ठंडा खाना बच जाता तो विन्या की मां (रखुमाई) खुद खा लेती थी या ज्यादा हो तो अपने विन्या को दे देती थी। उस विद्यार्थी को वह हमेशा ताजा रोटी परोसती थी, कभी बासी नहीं खिलाती थी। विन्या यह बात बराबर देखा करता था। एक दिन उसने मां से मजाक में पूछा-मां, आप तो हमें कहती हैं कि सबको समान दृष्टि से देखना चाहिए, परन्तु आपका भेदभाव अभी तक गया नहीं। देख, उस लड़के को आप ठंडा खाना कभी नहीं परोसती और मुझे परोसती रहती हैं। इतना फर्क तो आप भी करती हैं न?

सुनते ही मां ने जवाब दिया-''बात सही है बेटा, अभी मुझसे तेरे में और दूसरे में भेद हो जाता है। यह तुझमें मेरी आसक्ति है। मेरे हृदय में तेरे लिए पक्षपात है। तू मुझे पुत्रस्वरूप दीखता है, जबकि वह लड़का मुझे भगवद्स्वरूप दीखता है। होना तो यह चाहिए कि सभी लोग भगवद्स्वरूप दीखें परन्तु आसक्ति के कारण तू मुझे पुत्रस्वरूप दीखता है। जिस दिन तू भी मुझे भववद्स्वरूप दीख पड़ेगा, उस दिन यह भेदभाव खत्म हो जायेगा बेटा!''

धन्य है, महान पुत्र की महान माता का भेदभाव भी कैसा भव्य है! पुत्र के प्रति पुत्र भावना, पर के प्रति भगवद्भावना।

प्रस्तुति-रमेश दास

लाओत्ज़े क्या कहते हैं?

14. ताओ की व्यापकता और गंभीरता

1. *One looks for it and does not see it:*
its name is 'seed'.
One listens for it and does not hear it:
its name is 'subtle'.
One reaches for it and does not feel it:
its name is 'small'.
These three cannot be separated,
therefore, intermingled they form the One.

2. *Its highest is not light,*
its lowest is not dark.
Welling up without interruption,
one cannot name it.
It returns again to non-existence.
This is called the formless form,
the objectless image.
This is called the darkly chaotic.

3. *Walking towards it one does not see its face;*
following it one does not see its back.
If one holds fast to the DAO of antiquity
in order to master today's existence
one may know the ancient beginning.
This means: DAO's continuous thread.

अनुवाद

1. *इसे देखें और यह दिखता नहीं,*
इसको कहते हैं 'बीज।'
इसे सुनें और यह सुनाई देता नहीं।
इसको कहते हैं 'सूक्ष्म।'
इसे स्पर्श करना चाहें और यह अ-स्पर्श रह जाये,
इसको कहते हैं 'लघु।'
इन तीनों को अलग नहीं किया जा सकता है।
अतएव,
आपस में मिलकर ये 'एक' बनते हैं।

2. *इसकी महत्तम ऊंचाई प्रकाश नहीं है,*
इसकी गहराई अंधकार नहीं है।
अबाध गति से प्रवाहित है यह,
इसे नाम नहीं दिया जा सकता।
यह पुनः अव्यक्त की ओर लौटता है।
यह रूप-रहित रूप है।
यह वस्तु-रहित छाया है।
यह गहन दुर्गम है।

3. *इसकी ओर चलें, इसका चेहरा नहीं दिखता;*
इसका अनुगमन करें, इसका पृष्ठ भाग नहीं दिखता।
जब आप पुरातन ताओ को दृढ़ता से पकड़ते हैं,
अपने वर्तमान अस्तित्व को बनाये रखने के लिए,
तब इसका आदि-स्रोत जानने में आता है।
इसका भाव है, ताओ के तंतु सर्वत्र हैं।

भावार्थ—1. इसे देखते हैं, परंतु दिखता नहीं, यह 'बीज' कहा जाता है। इसे सुनें और यह सुनायी नहीं देता, इसे कहते हैं 'सूक्ष्म'। इसे छूना चाहें, परंतु यह छूने में नहीं आता, इसे कहते हैं 'लघु'। ये तीनों एक हैं।

2. प्रकाश इसकी पूर्ण ऊंचाई नहीं है। अंधकार इसकी गहराई नहीं है। यह विघ्नरहित गतिमान है। इसे नाम देना कठिन है। यह पुनः अव्यक्त की तरफ लौटता है। यह रूप-रहित रूप तथा वस्तु-रहित छाया है। इसे समझना बहुत कठिन है।

3. इसके सामने चलने पर इसका मुख नहीं दिखता। इसके पीछे चलने पर इसकी पीठ नहीं दिखती। जब मनुष्य अपने जीवन की रक्षा के लिए पुरातन ताओ को दृढ़ता से पकड़ता है, तब इसका मूल जानने में आता है। इसका तात्पर्य है कि ताओ के तंतु सर्वत्र हैं।

भाष्य—इस संदर्भ में ताओ की महिमा में कथन है। संत लाओत्ज़े जब ताओ की चर्चा करते हैं तब वे

भावविभोर हो जाते हैं, भावुक हो जाते हैं। ताओ ईश्वर नहीं है, कोई व्यक्ति नहीं है, किंतु जड़-चेतन-सृष्टि में व्याप्त वस्तुगत नियम है जिससे सारा संसार गतिमान है। यूनिवर्सल लॉ एवं विश्व-सत्ता का नियम ताओ है। संसार में जो कुछ होता है वह ताओ से होता है। जड़-चेतन-सृष्टि में नियम के असंख्य रूप हैं, किंतु संज्ञा रूप नियम एकवचन में चलता है वही ताओ है।

ताओ को, नियम को हम देखना चाहते हैं, परंतु उसे देख नहीं पाते, सुनना चाहते हैं, परंतु सुन नहीं पाते, और उसे छूना चाहते हैं, परंतु छू नहीं पाते। न दिखने से वह 'बीज' है, न सुनायी देने से वह 'सूक्ष्म' है और छूने में न आने से वह 'लघु' है। 'ताओ ते चिंग' के अनुवादक तथा चीनी भाषा के विशेषज्ञ जेम्स लेगी और रिचर्ड विल्हम ने बीज, सूक्ष्म और लघु को लिखा है कि चीनीभाषा में इन्हें क्रमशः ई, ही, वी, कहा गया है।

सन 1823, 1870, 1884 ई० में पश्चिम के कुछ विद्वानों ने उक्त तीनों लक्षणों को यहूदियों के ईश्वर के गुणों से तुलना की है। किंतु लेगी और विल्हम दोनों विद्वानों ने इसका खंडन किया है और कहा है कि लाओत्ज़े का ताओ कोई व्यक्ति नहीं है, कोई ईश्वर नहीं है, यह बात उनकी पुस्तक में अत्यंत स्पष्ट है। जेम्स लेगी ने लिखा, "इस अध्याय से यह स्पष्ट है कि लाओत्ज़े के मन में किसी व्यक्ति-ईश्वर का भाव नहीं है; अपितु वे उस रहस्यमय ताओ की कार्यविधि और उस मार्ग का वर्णन करते हैं जिसके अनुसार दृश्य-जगत संचालित होता है और जो मानव के लिए अगोचर है, और इसका आनुमानिक वर्णन केवल उतना ही संभव है जितना कि बुद्धि की पहुंच में आता है।"[1]

1. Lao-tze has not in the chapter a personal being before his mind, but the procedure of his mysterious Tao, the course according to which the visible phenomena take place, incognisable by human sense and capable of only apporximate description by terms appropriate to what is within the domain of sense.

(Page 12, Tao Te Ching : James Legge)

ताओ बीज है, सूक्ष्म है और लघु है, यह कथन उसकी महिमा में है। हम जड़तत्त्वों के सूक्ष्मतम स्वरूप परमाणुओं को भी नहीं देख पाते हैं, चेतन आत्माओं को देख पाना तो असंभव है ही। हम परमाणुओं के संगठित स्वरूप कार्य-पदार्थों को ही देख पाते हैं; परंतु उनमें रहे हुए स्वतः नियमों को कभी नहीं देख पाते। बीज, सूक्ष्म और लघु यह तो ताओ की महिमा के शब्द हैं। वस्तुतः तीनों मिलकर एक ही है विश्वव्यापी नियम।

इसकी महत्तम ऊंचाई प्रकाश नहीं है और गहराई अंधकार नहीं है। ताओ एवं विश्वव्यापी नियम प्रकाश और अंधकार तक ही नहीं है। यह तो देश-काल व्यापी अनंत है। अतएव प्रकाश और अंधकार से इसका सीमांकन नहीं हो सकता। **यह अबाधगति से प्रवाहित है। इसे नाम नहीं दिया जा सकता।** नाम तो ताओ दिया ही गया। अन्य लोगों ने अन्य नाम दिया। वेद के ऋषियों ने इसे ऋत कहा। कई विद्वानों ने इसे विशेष, विश्वव्यापी नियम, यूनिवर्सल लॉ आदि कहा। यह सतत प्रवाहित है, यह सच है।

यह पुनः अव्यक्त की ओर लौटता है। विश्वव्यापी नियमों द्वारा प्रकृति से नाना कार्य-पदार्थ बनते हैं और वे पुनः अपने कारण में विलीन होकर अव्यक्त-अप्रकट-अदृश्य हो जाते हैं। **यह रूप-रहित रूप है और वस्तु-रहित छाया है।** नियमों के दृश्यमान रूप नहीं हैं, परंतु संसार के सारे रूप उन्हीं से बनते हैं। ताओ का रूप नहीं है, परंतु उसकी छाया अर्थात प्रभाव समस्त जड़-चेतन-सृष्टि में व्याप्त है। दृश्यमान-जगत में जितने रूप प्रतीत होते हैं, सब ताओ के, विश्व-नियमों के बल से ही हैं।

यह गहन दुर्गम है। इसे समझना अत्यंत कठिन है, यह कथन भी सच ही है। यह विचित्रता भरा संसार जो दिखाई देता है, इन सबके अंतराल में व्याप्त नियमों को समझना अत्यंत कठिन है।

इसकी ओर चलें, इसका चेहरा नहीं दिखता, इसका अनुगमन करें, इसका पृष्ठभाग नहीं दिखता। यह वाक्य भी ताओ की, विश्वव्यापी नियम

की महिमा में लिखा गया है। यह न आगे से दिखता है और न पीछे से, यह कथन लाक्षणिक है। इसका तात्पर्य है कि इसको समझ पाना कठिन है।

जब आप पुरातन ताओ को दृढ़ता से पकड़ते हैं, अपने वर्तमान अस्तित्व को बनाये रखने के लिए, तब इसका आदि स्त्रोत जानने में आता है। इसका भाव है, ताओ के तंतु सर्वत्र हैं। इसका अर्थ है कि जब हम अपने कल्याण के लिए स्वाभाविक ताओ का अनुगमन करते हैं, जीवन के जिन नियमों से बंधन कटते हैं उनका आचरण करते हैं, तब ताओ का मूल समझ में आता है। मन का ताओ है, नियम है कि यदि अहंकार किया जायेगा तो बंधन बनेगा, दुख होगा। यदि अहंकार त्याग किया जायेगा तो मुक्ति होगी, शांति होगी। सांसारिक इच्छाओं में पड़ने पर बंधन और दुख आना स्वाभाविक है और इच्छारहित रहने से बंधन और दुख से छुटकारा है। यही ताओ है, नियम है।

प्रकृति के ताओ से, नियम से वर्षा, ऋतु-परिवर्तन, नाना निर्माण-विनाश चलते हैं। मानसिक और भौतिक दोनों जगत में ताओ व्याप्त है, विश्वनियम व्याप्त है। ग्रंथकार कहते हैं कि ताओ के तंतु सर्वत्र हैं। समस्त जड़-चेतन-सृष्टि में ताओ के तंतु फैले हैं। वेद के ऋषि कहते हैं, **समस्त द्युलोक, समस्त पृथ्वी, समस्त भुवन, समस्त दिशाएं तथा समस्त स्वर्ग में ऋत के—विश्वव्यापी नियम के तंतु फैले हैं, किंतु जो उनको भी चीरकर पारदृष्टि वाला हो जाता है, वह तत्काल उसको देख लेता है, वही हो जाता है। वह वही है ही।**[1]

वेद के ऋषि कहते हैं कि ऋत के तंतु सर्वत्र फैले हैं। उन्हीं से संसार का सब कुछ हो रहा है। किंतु जो इसको भी चीरकर आगे बढ़ जाता है वह आत्मा को देख लेता है, आत्मा हो जाता है, क्योंकि मनुष्य आत्मा है ही। ताओ, ऋत, विश्वव्यापी नियम, सब कुछ समझने का अर्थ है स्वयं को समझकर सबसे मुक्त हो जाना।

ज्ञान का अर्थ है जड़-चेतन के नियमों को समझना और जीवन में ऐसे नियमों से चलना जिससे मन सबकी आसक्ति से पूर्ण मुक्त होकर आत्मलीन हो जाये। ज्ञान का प्रयोजन है दुखों से छूटना, और सबका अभाव करके आत्मलीन हुए बिना दुखों से नहीं छूटा जा सकता।

1. परि द्यावापृथिवी सद्यऽइत्वा परि लोकान् परि दिशः परि स्वः।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत्॥
(यजुर्वेद 32/12)

आत्म-निवेदन

रचयिता—डॉ. वशिष्ठ तिवारी

हे गुरुवर तुम दयासिन्धु हो, मैं हूँ दरिद्र भिखारी।
बार-बार गुरु नमन करूँ मैं, तुम हो दारिदहारी॥

मैं हूँ अधम उधारन तुम हो, हो सबके उपकारी।
दीन-हीन को पार लगावत, अबकी मोरी बारी॥

मैं हूँ ज्ञानहीन अति दुर्मति, कृपादृष्टि दे डारी।
जन्म-जन्म से मोह-निशा में, भरमत बारी-बारी॥

तेरे द्वारे आया गुरुवर, समझ परम उपकारी।
पार लगाओ मेरी नैया, पड़त बीच मझधारी॥

भवनद भ्रम में डूबत हूँ गुरु, अब तेरी है बारी।
जब-जब भीड़ पड़ी भक्तन पर, तुमने उन्हें उबारी॥

अबकी बार ज्ञान दृष्टि दे, दूर करो अँधियारी।
पपिहा-जस स्वाती के बूँद सम, मैं हूँ सदा निहारी॥

एक आस विश्वास लगी गुरु, मैं हूँ तव बलिहारी।
काम क्रोध माया तृष्णा के, मैं हूँ अधिक बिहारी॥

ज्ञान विराग भक्ति दें गुरुवर, मेरी यही गुहारी।
भाव-भक्ति का मरम न जानूँ, आया तेरे द्वारी॥

कहत दास गुरु बार-बार, अब अन्त समय की बारी।
दया करो मुझ पर गुरुवर, अब मैं हूँ दीन दुखारी॥

धन बनाम धर्म

मानव जीवन में धन और धर्म दोनों की आवश्यकता है। धन से जीवन निर्वाह होता है, सुविधा होती है और धर्म से आत्मिक शांति होती है और आत्मकल्याण की प्राप्ति होती है, अतः जीवन में दोनों की आवश्यकता है। जब हम जिसकी जो कीमत है उस कीमत को नहीं समझ पाते, जिसकी कीमत कम है उसकी ज्यादा कीमत आंकने लगते हैं और जिसकी ज्यादा है उसकी कीमत कम आंकने लगते हैं, उसका अवमूल्यन करने लगते हैं तब गड़बड़ी होती है।

हमारे शरीर के लिए जूता कितना उपयोगी है, जूता न हो तो कांटे-कंकड़ पैर में चुभेंगे, गंदगी में, कीचड़-पानी में पैर पड़ेंगे। जूता हमारी कितनी रक्षा करता है। इसलिए जूते की भी अपनी कीमत है किंतु सब जानते हैं कि जूता पैर में ही पहना जाता है और मुकुट को सिर में पहना जाता है। आपको कोई ऐसा आदमी मिले जो मुकुट को तो पैर में बांध लिया हो और जूते को सिर पर धारण कर लिया हो तो आप कहेंगे कि यह आदमी पागल हो गया है, इसकी बुद्धि ठीक नहीं है।

बहुत मायने में हमारी स्थिति उस पागल से ज्यादा नहीं है। जीवन में सदैव धर्म का स्थान मुकुट की जगह होना चाहिए और धन का स्थान जूते की जगह होना चाहिए तो जीवन व्यवस्थित रहेगा। जूते का तिरस्कार नहीं है, इसी प्रकार धन का भी तिरस्कार नहीं है। जैसे जूता उपयोगी है वैसे धन भी उपयोगी है, लेकिन जूता कितना भी उपयोगी हो उसे पैर में ही पहना जायेगा, सिर पर नहीं पहना जायेगा। सिर पर तो मुकुट ही पहना जायेगा। इसी प्रकार धर्म को सदैव सिर पर ही धारण करना चाहिए, उसको ही अधिक महत्त्व देना चाहिए। लेकिन हो रहा है उलटा। लोगों की सारी सोच, सारी मेहनत धन की वृद्धि के लिए है। जो धार्मिक कर्मकाण्ड पूजा-पाठ भी करते हैं उसमें भी ज्यादातर उद्देश्य धन की ही वृद्धि होती है। यहां तक जिसे लोग भगवान मानते हैं, जिनकी रात-दिन पूजा करते हैं उस भगवान के सामने जब जाते हैं, विनय-वंदना करते हैं, प्रार्थना करते हैं, उसके भीतर भी यही उद्देश्य होता है कि हमारा धन बढ़े, परिवार सुखी रहे।

कितने लोग ऐसे हैं जो इसलिए पूजा-प्रार्थना करते हैं कि मेरा कल्याण हो जाये? धार्मिक कर्मकाण्ड में आदमी जहां पूजा भी करता है वहां क्या होता है? यही कि हे भगवान! व्यापार में मुनाफा हो जाये, लड़के को नौकरी लग जाये, मुकदमा में विजय मिल जाये, पत्नी की बीमारी ठीक हो जाये। वहां आत्मकल्याण की कामना है या धन की कामना है? जिस समय आप भगवान की प्रार्थना करते हैं उस समय अपने हृदय को टटोलें कि आपका प्रेम कितने प्रतिशत भगवान के लिए है और कितने प्रतिशत सांसारिक वस्तुओं के लिए है?

जो धार्मिक कर्मकाण्ड किये जाते हैं जिसे आरती-वंदना, पूजा-पाठ कहते हैं वहां भी उद्देश्य धन की ही वृद्धि है। धन सिरमुकुट हो गया है। जब धन सिरमुकुट होगा तो आदमी पाप से बचेगा नहीं। चाहे गृहस्थों की बात हो चाहे साधु वेषधारी विरक्तों की बात हो। साधु वेषधारियों में जिनका उद्देश्य गुरुवाई और मठ है वे भी गुरुवाई-मठ-महंती के लिए कैसा-कैसा अनर्थ कर रहे हैं, जगजाहिर है। उसमें उद्देश्य साधना, लोककल्याण या आत्मकल्याण नहीं है, उद्देश्य है मठ का अधिपति एवं गुरु बनना। विवेकवान संत कहा करते हैं कि बहुत समझ-बूझकर, अपनी शक्ति तौलकर ही आदमी को गुरु बनना चाहिए अन्यथा गुरु बनना नरक का द्वार है। अपने को सम्हाल नहीं पाये हैं, अपने मन-इन्द्रियों पर संयम नहीं है, मन साधना में परिपूर्ण नहीं हुआ है और गुरु बनकर दूसरे को शिक्षा दे रहे हैं। ऐसे लोग स्वयं डूबे हैं और शिष्यों को भी डुबायेंगे। कबीर साहेब ने कहा है—

घर घर मंतर देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना।
गुरु सहित शिष्य सब बूड़े, अंत काल पछिताना॥

(बीजक, शब्द 4)

सन्मार्ग में लोगों को लगाने के लिए धर्म की दीक्षा देनी पड़ती है, लोगों को धर्म के मार्ग में लगाना पड़ता है, लेकिन गुरु बनने के लिए अपने को तौल लेना चाहिए। गुरु का अर्थ होता है बड़ा, महान, भारी होना।

यहां भारी होने से तात्पर्य शरीर से भारी होना नहीं है, अपितु आचरण से, ज्ञान-वैराग्य, तप-साधना से भारी होना है। जिसका मन आत्म-रंग में रंग चुका हो, पूरी तरह से स्ववश हो चुका हो और अपने आप पर पूर्ण संयम हो ऐसे व्यक्ति को ही दूसरों के गुरु बनकर कल्याण की जिम्मेदारी लेनी चाहिए। नहीं तो भटकाव होगा।

जहां कहीं भी धन को प्रमुखता दिया जायेगा, वहां पाप होगा। आज हर तरफ शिकायत है कि भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया है, घूसखोरी, मिलावटबाजी, कालाबाजारी बहुत बढ़ गई है, हवाला-घोटाला बहुत बढ़ गये हैं। यह सब क्यों हो रहे हैं? यह सब करने वाले कौन लोग हैं? ऐसा करने वाले वे लोग हैं जिनका पेट भरा हुआ है। ऐसा सुनने में बहुत कम आता है कि आदमी दो-तीन दिनों से भूखा था, पत्नी-बच्चे भूख से व्याकुल थे इसलिए मजबूर होकर उसे घूस लेना पड़ गया। जीवन निर्वाह हो ही नहीं रहा था किसी प्रकार से तो मजबूर होकर कालाबाजारी-मिलावटबाजी करनी पड़ी। ये सारे के सारे गलत काम वे ही लोग करते हैं जिनके पास धन की अधिकता होती है। उनके जीवन निर्वाह में कोई कमी नहीं होती।

एक बात याद रखें, आदमी पेट भरने के लिए पाप नहीं करता है, सदैव पेटी भरने के लिए पाप करता है किंतु पेटी आज तक किसी की भी नहीं भरी है। फिर भी लोग सदैव पेटी भरने में ही लगे हुए हैं। यहीं पर धर्म का नियंत्रण आवश्यक होता है। आज धर्म धन से नियंत्रित होने लग गया है। जो अधिक दान कर दे, बड़ा आयोजन कर दे, चाहे वह दान या धार्मिक आयोजन किसी के पेट को काटकर किया जा रहा हो, किसी के हक को मारकर किया जा रहा हो, गरीबों के खून को चूस कर किया जा रहा हो, मिलावटबाजी-कालाबाजारी करके किया जा रहा हो उसे लोग कहते हैं यह बड़ा धार्मिक आदमी है।

जिस धर्म के पीछे अधर्म है वह धार्मिक आयोजन कैसे होगा? वह आदमी धार्मिक कैसे हो सकता है? लेकिन आज लोग किसी के धार्मिक होने की पहचान उस आदमी द्वारा अधिक धन दान देने से करते हैं। और जब यह सब होगा तो गड़बड़ियां होंगी ही। धार्मिक तो वह आदमी है जिसका जीवन सदाचार से परिपूरित है, सच्चरित्र से भरा हुआ है, त्याग-तप से भरा हुआ है। चाहे वह दान बिल्कुल ही न कर पाता हो।

एक मठ में सत्संग का आयोजन था। एक प्रसिद्ध स्वामी जी बुलाये गये थे। सत्संग शुरू हुआ। एक व्यक्ति जिसे सेठ कहना चाहिए, वह सामने ही आकर बैठा और जैसे ही सत्संग शुरू हुआ वैसे ही नींद लेना शुरू कर दिया। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें और कहीं नींद आये या न आये सत्संग में जरूर नींद आती है क्योंकि निश्चिन्त हो जाता है मन। उसे सोते देखकर स्वामी जी को बहुत बुरा लगा। स्वामी जी ने व्यवस्थापक महंत जी को बुलाकर कहा कि सामने जो आदमी सो रहा है उसे जगा दें। किंतु महंत ने उस पर ध्यान नहीं दिया। वह आदमी सोता ही रहा। थोड़ी देर बाद स्वामी जी ने फिर महंत जी को बुलाकर कहा कि आखिर तुम उसको जगाते क्यों नहीं हो? महंत जी ने कहा—'स्वामी जी, आप नहीं जानते हैं कि वह आदमी मोटी भैंस है। जैसे ही सत्संग समाप्त होगा वैसे वह घोषणा कर के खूब रुपया देगा। ऐसे लोगों को हम मानते हैं कि ये बड़े धार्मिक हैं। बड़े-बड़े मंदिरों में, धार्मिक स्थलों में जो लोग दान देते हैं यदि उनके नाम की पट्टी न लगायें तो दान देना बंद हो जायेगा। आदमी धर्म करता है या व्यापार करता है? यह तो व्यापार चल रहा है कि हम दान करेंगे और हमारा नाम सबके बीच में पुकारा जायेगा कि उन्होंने इतना दान किया है। इस व्यापार में घाटा भी हो सकता है और मुनाफा भी हो सकता है। व्यापार तो व्यापार है। ऐसा धर्म काम नहीं आयेगा। यह धर्म नहीं है, धर्म का ढोंग है। धर्म का ढकोसला है, दिखावा एवं पाखण्ड है और अपने को धोखा देना है। यह एक जगह की बात नहीं है, प्रायः हर जगह यही हो रहा है।

आदमी पेट भरने के लिए नहीं किन्तु पेटी भरने के लिए पाप करता है। क्योंकि धन को अधिक महत्त्व दे दिया गया है। धन की निंदा नहीं है। कोई संत धन की आलोचना नहीं करता। जीवन निर्वाह के लिए तो धन चाहिए ही। यदि बस-ट्रेन से यात्रा करना हो तो बिना

पैसे के काम नहीं चलेगा। वैसे तो भारत के बहुत-से साधु नामधारी बिना टिकट यात्रा करते हैं। हम लोगों को कई बार विचित्र स्थिति का सामना करना पड़ता है। ट्रेन में रिजर्वेशन होता है, गाड़ी आती है और जब अपने कोच में चढ़ने लगते हैं तो यात्री कहते हैं स्वामी जी, यह डिब्बा आप लोगों का नहीं है, पीछे जाओ। हम कहते हैं—भैया! हमारा टिकट है हमें चढ़ने दो। तो कहते हैं—अच्छा, आप लोग टिकट लेते हैं। उन लोगों को आश्चर्य होता है कि साधु लोग कैसे टिकट लिये हैं।

एक सच्ची घटना याद आती है। पन्द्रह-बीस साल पहले की बात है। राजस्थान में गुरुदेव जी का कार्यक्रम था। हम लोग साथ में थे। अन्य आश्रमों के भी संत आये थे। उनमें दस-बारह साल का एक बच्चा था वह भी साधु वेषधारी था। मैंने पूछा कि कहां से आये हो? उसने बताया कि अमुक जगह से आया हूं। फिर पूछा कि कहां जाओगे? उसने कहा—अमुक जगह जाना है। मैंने कहा—जितनी दूर से आये हो और जितनी दूर जाना है तो क्या टिकट के लिए पैसा मिल जाता है? उसने कहा—टिकट की क्या जरूरत है, हम तो टिकट लेते ही नहीं है। मैंने कहा—ठीक है टिकट नहीं लिये। टी.टी.ई. आया और डांटेगा तब क्या होगा? उसने कहा—आना फ्री और जाना फ्री, पकड़े गये तो खाना फ्री। यह साधुता है कि साधुता के नाम पर कलंक है। ऐसी साधुता से ही साधु समाज बदनाम होता है। इसलिए साधुओं की तो और जिम्मेदारी होती है कि वे बहुत सम्हाल कर जीवन आचरण करें, जीवन चलायें।

गृहस्थों को तो कहा जाता है कि भाई! वे तो गृहस्थ हैं उनसे भूल होती ही है। साधुओं से तो आशा की जाती है कि उनका जीवन भूल-दोष रहित होना चाहिए। इतना अवश्य है कि कोई साधु वेषधारी एकाएक पूरा सिद्ध नहीं हो जाता। गलती किससे नहीं होती है? लेकिन अपनी गलती को समझ लेना और समझकर उसे सुधारने का प्रयास करना बहुत बड़ी बात है। धीरे-धीरे समझते और सुधारते जायेंगे तो एक-एक दोष निकलते जायेंगे और जीवन पूर्ण दोषमुक्त हो जायेगा। यदि गलती को स्वीकार ही नहीं किये, दूसरा बताता भी है तो उसे सही सिद्ध करने का प्रयास करते हैं तब तो फिर सुधार की संभावना ही खत्म हो गयी।

जीवन में धर्म की भी जरूरत है और धन की भी जरूरत है। धन कमायें लेकिन धन के नाम पर धर्म को ओझल न करें, धर्म का अवमूल्यन न करें। धर्म का अर्थ है नैतिकता, सदाचार, आत्मसंयम। सच्चा धर्म है अपने आप पर संयम और दूसरों के साथ शील का व्यवहार। कौन किस परम्परा को मानता है, कैसी पूजा करता है, कैसा पाठ करता है, यह उसके विश्वास पर निर्भर है। लेकिन वह कहीं भी चला जाये सुखी तब होगा जब उसका अपने आप पर संयम होगा और दूसरों के साथ सुंदर व्यवहार होगा।

दुनिया में अनेक सम्प्रदाय हैं। सबके अपने ग्रन्थ हैं, महापुरुष हैं। सबके अपने विश्वास हैं। लोगों ने उनको ही धर्म मान लिया है और कहते हैं कि हमारा धर्म बड़ा है और इसी बड़ा-बड़ा के लिए लड़ाई होती है। लेकिन जरा कल्पना करें, आप ऐसे लोक में चले जायें जहां मनुष्य रहते हों और वे मनुष्य सुसभ्य हों तो क्या आप यह सोच सकते हैं कि हमारी पृथ्वी का वेद पाठ, कुरान पाठ, बाइबिल पाठ, बीजक पाठ, गुरुवाणी का पाठ वहां होगा? वहां राम का नाम, रहीम का नाम, यीशु का नाम लेने वाला कोई होगा? वहां मंदिर, मस्जिद और गिरजा होंगे? ये सब कुछ वहां नहीं होंगे। लेकिन यदि वे सुसभ्य हैं तो वहां भी लोग सुख से तभी रह सकते हैं जब उनका अपने आप पर संयम और दूसरों के साथ शील और प्रेम का व्यवहार होगा। इसके बिना सुखी कोई नहीं हो सकता है। कबीर साहेब तो कहते हैं—

बांग निमाज कलमा नहिं होते, रामहु नाहिं खुदाई॥

जब बांग नहीं दी जाती थी, नमाज नहीं पढ़ा जाता था, पूजा नहीं की जाती थी, राम-राम रहीम-रहीम नहीं कहा जाता था तब धर्म था कि नहीं? बांग देना, नमाज पढ़ना, पूजा करना, राम कहना, रहीम कहना बहुत पुराना नहीं है। आज हिन्दू समाज में जितनी पूजा पद्धतियां हैं सब ढाई-तीन हजार साल की हैं। इनमें से कोई वैदिक नहीं है और वैदिक देवताओं की आज कोई पूजा नहीं करता। देवी-देवता, पूजा-पद्धति तो बदलते

रहते हैं। लेकिन संयम और शील इनकी आवश्यकता सबको सब समय है। इनके बिना कोई कहीं भी सच्चे अर्थों में सुखी नहीं हो सकता।

आदमी का दिमाग देवता बनाने का कारखाना है। देश-काल-परिस्थिति के अनुसार नये-नये देवी-देवता पैदा होते रहते हैं और पुराने-पुराने देवी-देवता अस्त होते रहते हैं। लेकिन शील और संयम—इनकी आवश्यकता कहां नहीं है? मानव मात्र को इनकी आवश्यकता है और इनके बिना कोई सुखी नहीं हो सकता। इनके बिना परस्पर में एकता नहीं हो सकती।

राष्ट्र की बात हम बहुत करते हैं, लेकिन राष्ट्र क्या है? खाली जमीन को राष्ट्र कहेंगे? पेड़-पौधे, नदी-नाले, पहाड़, मकान क्या ये राष्ट्र हैं? क्या हम चन्द्रमा को राष्ट्र कहेंगे? जैसी हमारी धरती है वैसे चन्द्रमा भी एक लोक है। वह भी धरती है लेकिन वहां इंसान ही नहीं है तो उसे राष्ट्र कैसे कहेंगे? असली राष्ट्र तो मनुष्य है। और देश में रहने वाले जितने भी लोग हैं चाहे वे किसी भी श्रद्धा-विश्वास के हों, किसी भी सरणी-मत-मजहब के मानने वाले हों उनके साथ प्रेम का व्यवहार, सेवा-सहायता और करुणा का व्यवहार यही राष्ट्रीय भक्ति है। इसके बिना देश में कभी एकता नहीं आयेगी, देश कभी अखण्ड नहीं होगा।

परस्पर में जहां संदेह है, भेद है, फूट है, अविश्वास है, धोखाधड़ी है वहां राष्ट्रीय एकता कैसे अटूट रह सकती है? राष्ट्र एक कैसे बना रह सकता है? राष्ट्रीय एकता को बनाये रखना चाहते हैं, उसको और अधिक मजबूत करना चाहते हैं तो परस्पर विश्वास, प्रेम, सद्व्यवहार की आवश्यकता होगी। और यह आवश्यकता हर देश के नागरिक को होगी।

इसलिए हम मनुष्यता को, इन्सानियत को समझें। इन्सानियत दब जाती है, मान्यतायें हावी हो जाती हैं तब गड़बड़ियां शुरू होती हैं। मान्यताओं को जितना महत्त्व देते जायेंगे उतना इन्सानियत दबती जायेगी, किंतु सांप्रदायिक भावनाओं में डूबे लोग इन्सानियत को समझते कहां हैं?

एक महात्मा दोपहर के समय खुले प्रकाश में हाथ में लालटेन लिए एक शहर के चौराहे पर कुछ ढूंढ़ रहे थे। लोगों ने देखा कि खुला प्रकाश, खुली धूप, दोपहर का समय और महात्मा लालटेन जलाकर ढूंढ़ रहे हैं। कौतुहल हुआ मन में। लोगों ने पूछा—बाबा, क्या ढूंढ़ते हो? महात्मा ने कहा—बेटा, आदमी ढूंढ़ता हूं। लोगों ने कहा—इतने लोग आ-जा रहे हैं क्या ये सब मनुष्य नहीं हैं? महात्मा ने कहा—बेटा! इन लोगों को मनुष्य कैसे कहूं? इनमें कोई हिन्दू है, कोई मुसलमान है, कोई सिक्ख है तो कोई पारसी है, कोई बौद्ध है तो कोई जैन है, कोई और कुछ है। इनमें से शायद ही कोई कहे कि मैं आदमी हूं।

वास्तविकता यही है कि पहले हम आदमी हैं। हम आदमी बनकर ही पैदा हुए हैं। कोई हिन्दू-मुसलमान बनकर पैदा नहीं होता है। हिन्दू-मुसलमान की मान्यता तो बाद में बनायी जाती है। आप सड़क पर जा रहे हैं। दो महीने का एक शिशु सड़क पर पड़ा हुआ है। उसे देखकर क्या कहेंगे कि यह किसका बच्चा है? क्या कोई गारंटीपूर्वक कह सकता है कि यह जो शिशु पड़ा हुआ है यह हिन्दू का बच्चा है, मुसलमान का बच्चा, सिक्ख-ईसाई का बच्चा है? कोई बता नहीं सकता है कि यह किसका बच्चा है? लेकिन गारंटी के साथ कहा जा सकता है कि यह आदमी का बच्चा है। जांचना-पूछना नहीं पड़ेगा।

जिसको देखते ही पहचान ले वही असलियत है, वास्तविकता है और जिसके लिए पूछना पड़े वह नकली है और उसी नकलीपना में सब उलझ गये हैं।

एक आदमी बैठा हुआ था। उसके पास एक दूसरा आदमी आ गया। उसने पूछा—तुम किस जाति के हो? उस आदमी ने कुत्ते की तरफ इशारा करके कहा कि यह किस जाति का है? उसने कहा—अरे! यह तो कुत्ता है। उसने कहा—आप कुत्ते को झट से पहचान लिये कि यह कुत्ता है, किंतु मुझे नहीं पहचान पाये कि यह आदमी है, मेरी जाति पूछ रहे हैं? कितना दुर्भाग्य है? हम गधे को देखकर पहचान लेते हैं, घोड़ा को देखते ही पहचान लेते हैं, हाथी, गाय, बैल, कुत्ता, बिल्ली आदि को देखते ही पहचान लेते हैं लेकिन आदमी को देखकर नहीं पहचान पाते हैं कि जैसे मैं आदमी हूं वैसे यह भी

आदमी है। आदमी को आदमी से पूछना पड़ता है और जब हम पूछ करके मूल्यांकन करते हैं तब मानवता का मूल्य गिर जाता है। बहुत पाप हमने किया है आदमी को आदमी न मानकर। अब यह पाप बिल्कुल बंद होना चाहिए। किसी से जाति पूछना अपराध ही नहीं है, महापाप है। इसलिए जाति न पूछें। हम केवल मनुष्य हैं। हमारा दिल चाहता है कि कोई मेरा अपमान न करे, मेरा तिरस्कार न करे किन्तु जहां मैं जाऊं लोग मेरे साथ अच्छा व्यवहार करे। तो क्या जैसा मेरा दिल चाहता है वैसा दूसरे का दिल नहीं चाहता? हर आदमी का दिल तो यही चाहता है। हर आदमी अपने दिल को तो पढ़ सकता है, समझ सकता है। आदमी कुछ पढ़ पाये या न पढ़ पाये, दिल को पढ़ने में कौन-सी परेशानी है?

किसी भाषा को ठीक से जानने के लिए उस भाषा के व्याकरण के नियम का ज्ञान होना जरूरी होता है। कुछ सूत्र होते हैं उसका ज्ञान होना जरूरी होता है लेकिन दिल की भाषा ऐसी भाषा है जिसके लिए किसी क्रिया, प्रत्यय और धातु को याद रखने की जरूरत नहीं है। और यह दिल की भाषा ऐसी भाषा है कि अंधा, लूला और लंगड़ा भी इसे समझता है। दिल की किताब को तो कोई भी पढ़ सकता है लेकिन कितना दुर्भाग्य है कि हम अनेक भाषाओं के विद्वान हो जाते हैं, अनेक शास्त्रों के विद्वान हो जाते हैं लेकिन अपने दिल को नहीं पढ़ पाते। सद्गुरु कबीर ने कहा है—

सदा धर्म जाके हृदया बसई, राम कसौटी कसतहि रहई।

(बीजक, रमैनी 64)

यह राम कसौटी क्या है? दिल की भाषा को पढ़ना, अंतरात्मा की आवाज को सुनना। और यह अंतरात्मा की आवाज, आदमी का दिल सबसे बड़ी पोथी है। वैसे पूछिये आप लोगों से कि दुनिया की सबसे बड़ी किताब कौन है तो एक उत्तर नहीं मिलेगा। लेकिन हकीकत क्या है? हकीकत है कि दुनिया की सबसे बड़ी और पवित्र किताब आदमी का दिल है। दुनिया की जितनी भी किताबें हैं चाहे उनका नाम कुछ भी ले लें सारी की सारी किताबें आदमी के दिल से ही निकली हुई हैं। इसलिए दिल को समझें। किसी कवि ने कहा है—

लौहि महफ़ूज़स्त दर मानी दिलत।
हर चि भी ख्वाही शबद ज़ू हासिलत।
दर हकीकत खुद तुई उम्मुल किताब।
खुद जिखुद आयाति खुदरा बाज़ याब॥

आदमी का दिल "लौहि महफूज" सुरक्षित चित्र पट है। उसे चाहिए कि कुरान की आयतों को अपने दिल से निकाले। हमारे ऋषि कहते हैं—"सर्वासां विद्यानां हृदयं एव एकायनम्" सारी विद्याओं का केन्द्र हृदय है और हृदय को कौन नहीं समझता है? अपने दिल की मांग को कौन नहीं समझता है? इसलिए अपने दिल की भाषा को पढ़ें, दिल की आवाज को सुनें। और दिल की आवाज को जो सुन लेगा वह किसी भी बात को लेकर दूसरों की अवहेलना नहीं करेगा, दूसरों का तिरस्कार नहीं करेगा। वह सबके साथ मनुष्यता का ही व्यवहार करेगा। और यही तो सबसे बड़ा धर्म है। हमारे मनीषी कहते हैं—

श्रुयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

अर्थात सभी धर्मों के सार को सुनो और सुनकर धारण करो वह यह है जो अपने प्रतिकूल हो, जो हम अपने लिए नहीं चाहते हैं वह दूसरों के साथ न करें। यही सबसे बड़ा धर्म है। और जब तक यह धर्म आचरण में नहीं आयेगा तब तक हम कुछ भी पा जायें कुछ भी बन जायें आत्मिक शांति का अनुभव नहीं कर सकते। इसलिए इस धर्म को समझें और इसका आचरण करें।

जीवन निर्वाह और सेवा के लिए धन की आवश्यकता है, इसे कोई इंकार नहीं कर सकता। हर आदमी को धन-प्राप्ति के लिए परिश्रम करना चाहिए, लेकिन यह बात सदैव याद रखना चाहिए कि आदमी चाहे कितना भी धन कमा ले, उससे उसे आत्मिक शान्ति, मन की प्रसन्नता नहीं मिल सकती। इसके लिए तो धर्म की आवश्यकता है। सच्चा धर्म है अपने पर संयम और दूसरों के साथ शील-करुणा का व्यवहार।

—धर्मेन्द्र दास

धारावाहिक उपन्यास

संत कबीर

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

(गतांक से आगे)

नीरू-नीमा के जिस परिवार में कबीर का लालन-पालन हो रहा था उसने एक-दो पीढ़ी पहले ही इस्लाम धर्म ग्रहण किया था। मुसलमानों के आने से पहले इस परिवार के पूर्वज कोरी थे, जो कपड़े बुनकर और बेचकर अपनी आजीविका चलाते थे। ये पूर्णरूपेण नाथपंथी थे। उत्तर प्रदेश में कोरी जाति की बहुलता थी। यह जाति न हिन्दू थी, न मुसलमान। ये निराकार ब्रह्म के उपासक थे तथा जातिगत श्रेष्ठता एवं अवतारवाद को पूरी तरह नकारते थे। बाद में ये भयवश मुसलमानी धर्म अपनाते चले गये और जुलाहा हो गये। मुसलमान हो जाने के बाद भी नीरू-नीमा के बीच तथा जुलाहा बस्ती में योग चर्चा, अत्यंत मामूली धर्म चर्चा की तरह होती थी। बालक कबीर बहुत मनोयोग से इसे सुनता और गुनता था। इस तरह बाल्य अवस्था में ही उसे नाथपंथी धर्म, उसकी साधना पद्धति, अवधूत का परम लक्ष्य अलख निरंजन का काफी कुछ बोध हो गया था। जो आगे चलकर उसके व्यक्तित्व में पूरी समग्रता के साथ उद्‌घाटित हुआ था।

कुछ बच्चे अपनी उम्र से काफी बड़े होते हैं। दिव्य संस्कारी होने के कारण इनके सारे क्रिया कलाप अत्यंत विशिष्ट तथा अचंभित कर देने वाले होते हैं। यही दशा कबीर की भी थी। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती गई थी उसके उम्र का निरालापन उजागर होता चला गया था। कबीर नीमा के साथ बैठकर काम करने को तैयार हो जाता तब नीमा उसकी चपलता देख हंसने लगती थी। कपड़ा बुनते नीरू को मस्ती में डूबकर नाथपंथी पद गाते देख वह स्वयं झूम उठता था। बहुत ही शीघ्र उसने सूत कातना एवं कपड़ा बुनना शुरू कर दिया। जब खड्डी चलती थी, कबीर के मुख से कवित्त अपने आप फूटते थे। नीरू-नीमा उसकी यह विलक्षण बुद्धि देख रोमांचित थे। कबीर का भजन सुनने पास-पड़ोस के लोग नीरू के घर इकट्ठे हो जाया करते। जुलाहा बस्ती के सारे लोग कबीर की इस असाधारण प्रतिभा से अत्यंत चमत्कृत थे। धीरे-धीरे इसकी चर्चा बस्ती के बाहर भी होने लगी। बाद में कबीर की यही विलक्षणता नीरू-नीमा की चिंता का सबब बन गई थी। बहुत सोचने पर भी उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि कबीर की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था कैसे करें। एक ओर गरीबी थी तो दूसरी ओर मुसलमानों में भी जुलाहा नीची जाति होने के कारण कोई भी कबीर को तालीम देने को तैयार नहीं था। बड़ी उम्मीद लेकर नीरू काशी के प्रसिद्ध मौलवी के पास गया था। उसने दोनों हाथ जोड़कर उनसे कबीर को दीनी तालीम देने हेतु अनुनय किया था। लेकिन मौलवी ने उसे लताड़ दिया था, "अरे, जुलाहे भी पढ़ने-लिखने लगें तो कपड़ा कौन बुनेगा? जाओ कबीर को काम-धंधे में लगाओ।" इस पर नीरू ने उन्हें याद दिलाया था कि हुजूर, आप ही ने तो नामकरण करते वक्त उसके महान होने की बात कही थी। इसीलिए आपके पास आया था। अभी से उसने कवित्त कहना शुरू कर दिया है। सचमुच उसे इलाही का इल्म हासिल है हुजूर। इंकार मत कीजिए। आपकी बात सच हो रही है।

मगर मौलवी ने हंसते हुए उसका मखौल उड़ाया था, "सपने मत देखो नीरू, नाम रख देने से कोई बड़ा नहीं हो जाता। और क्या तुमने मुझे इतना बेवकूफ समझ रखा है कि मैं तुम्हारी बेसिर-पैर की बातों का यकीन कर लूंगा। पांच साल का बालक भला कवित्त कहने लगेगा? जाओ-जाओ, मेरा वक्त खराब मत करो।"

और बेचारा नीरू निराश लौट आया था। पंडितों से तो उम्मीद करना ही मूर्खता थी। वे भला म्लेच्छ

मुसलमानों को जिनकी छाया से ही वे दूर भागते थे, क्यों शिक्षा देने लगे? नीमा को बताया तो वह भी दुखी हो गई थी, "या मालिक! यह कैसा न्याय है तेरा? हम गरीबों को तालीम पाने का भी हक नहीं।" दोनों इसी को लेकर सोच में डूबे हुए थे कि कबीर बाहर से घूमकर घर में आ गया था। नीरू-नीमा को परेशान और दुखी देख समझ गया था कि वे उसकी तालीम को लेकर ही चिंतित हैं। उसने हंसते हुए कहा था, "आप लोग परेशान न हों। ये पंडित और मौलवी भले ही मुझे तालीम न दें, मैं साधु-संतों की संगत में जाकर ज्ञान प्राप्त कर लूंगा।"

लेकिन नीरू-नीमा का मन शांत नहीं हुआ था। कबीर का व्यवहार अत्यंत असाधारण था। जब देखो तब वह साधु-संतों के पीछे दीवाना बना घूमता फिरता था। जहां कहीं पंडितों का प्रवचन होता, वह चुपचाप पीछे जाकर बैठ जाता। और घर लौटकर नीरू-नीमा से तरह-तरह के सवाल किया करता। उसके इन सवालों से दोनों निरुत्तर हो जाते थे। नीमा रीझती भी थी और खीझती भी थी। यही हाल नीरू का भी था।

कल तीनों बाजार जा रहे थे। वहां थान बेचकर कुछ घर-गृहस्थी का सामान लाने की बात थी। कबीर नीमा का हाथ पकड़े खामोश चला जा रहा था। नीरू ने पहले ही चेता दिया था कि वह रास्ते में उलटे-सीधे सवाल नहीं करेगा, तभी उन्हें बाजार ले जायेगा इसलिए तीनों केवल मुस्कुराकर एक-दूसरे को देख लेते और फिर चलने लगते। अभी थोड़ी ही दूर गये थे कि एक पंडित जी आकर उनके सामने से गुजर गये थे। वे माथे पर चंदन का तिलक लगाये, गले में रूद्राक्ष की माला पहने हुए थे। उन्हें देख कबीर चुप नहीं रह सका। उसने पूछा "यह कौन है? और माथे पर क्या लगाया हुआ है?" सुनकर नीरू हंसने लगा। नीमा भी हंस पड़ी। फिर नीरू बोला "बेटा, तुमने कहा था न कि तुम रास्ते में चुपचाप चलोगे।" जवाब में कबीर हंसते हुए मनुहार करने लगा, "बताओ न अब्बा !"

नीरू ने हंसते-हंसते कहा, "बेटा, ये ब्राह्मण हैं। और माथे पर चंदन का तिलक लगाये हुए हैं। हिन्दू जाति में ब्राह्मण अपने को सबसे बड़ा मानते हैं।" फिर तो कबीर ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी थी। और उनके जवाब देते नीरू थक गया था। लेकिन कबीर के सवालों का अंत नहीं हुआ था। नीमा कभी कबीर को देखती तो कभी नीरू को, कभी मुस्कुराने लगती तो कभी गंभीर हो जाती। दोनों हमेशा की तरह इस बार भी कबीर की उत्कंठा एवं जिज्ञासा से विचलित हो गये थे। दुख इस बात का था कि वे उसे संतुष्ट नहीं कर पाते थे। फिर भी जब वे बाजार से घर लौटे तो उनके चेहरे खुशी से दमक रहे थे। वजह, अब उन्हें पूरा विश्वास होने लगा था कि निश्चय ही कबीर किसी जन्म का दिव्य संस्कारी व्यक्ति है।

किन्तु रात में कबीर को बड़ी देर तक नींद नहीं आयी थी। वह नीरू की बतायी बातों को गुनता रहा। कोई आदमी जाति से कैसे छोटा-बड़ा हो जाता है? जबकि सारे इंसान तो एक से ही होते हैं। सारे मानव एक जैसे जन्मते हैं और अंत में मर जाते हैं। यहां कोई गरीब, कोई अमीर क्यों है? हिन्दू ईश्वर की पूजा करते हैं तो मुसलमान खुदा की इबादत करते हैं। क्या इस संसार में दो परमात्मा हैं? और क्या वह परमात्मा या खुदा पूजा-भक्ति अथवा इबादत से प्रसन्न होता है? यदि हां, तो फिर चारों ओर अनाचार, अत्याचार, लूट-खसोट एवं अन्याय का साम्राज्य क्यों है? क्यों लोग धर्म के नाम पर कत्लेआम करते हैं? और वह सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ ईश्वर आकाश में बैठा चुपचाप देख रहा है? क्यों किसी गरीब की वह रक्षा नहीं करता? क्यों समाज में जातिगत ऊंच-नीच की खाई बनी हुई है? और क्यों हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं? ये सारे प्रश्न कबीर के हृदय को झिंझोड़ डालते थे। और वह इनके जवाब की तलाश में यहां-वहां मारा-मारा फिरता था। कभी पंडितों के कथा-प्रवचन में जा बैठता तो कभी योगी-अवधूतों के पीछे-पीछे चला जाता।

सुबह उसके संगी साथी बस्ती के चौराहे पर छुपा-छुपी खेल रहे थे। वह पेड़ की छांव में बैठा सोच में

डूबा उनको खेलते हुए देख रहा था। अपने साथियों के बुलाने पर भी कबीर उनके साथ खेल में शामिल नहीं हुआ, तब उससे उम्र में बड़े नासिर ने चिढ़कर उसकी हंसी उड़ाते हुए कहा था, "रहने दो उसे, बेचारा अपने मां-बाप की चिंता में डूबा हुआ है। पता नहीं किस जाति-गोत्र का है? नीमा चाची उसे लहरतारा से उठा लायी थी। यह उसका जन्माया बेटा थोड़े है !"

एकाएक जैसे किसी ने वहां जबरदस्त विस्फोट कर दिया था। सारे बच्चे खेलना छोड़ स्तब्ध खड़े रह गये। कबीर को तो मानो सांप सूंघ गया था। वह उठकर धीरे-धीरे नासिर के पास जाकर खड़ा हो गया और बहुत देर तक उसके हाथों को कस कर पकड़े खड़ा रहा। उसके अंतस में हाहाकार मचा हुआ था और मुखमंडल पर तमाम तरह के हाव-भाव उमड़-घुमड़ कर विलीन होते जा रहे थे। सारे बच्चे दम साधे कबीर को देख रहे थे। आखिर में वह नासिर का हाथ छोड़कर तेज कदमों से चलता हुआ घर लौट गया था। नीमा दोपहर का खाना तैयार करके आंगन में बैठी उलझे धागों को सुलझाने में व्यस्त थी। कबीर सीधा उसके आगे जा बैठा और नीमा को एकटक निहारने लगा। मानो उसकी आंखों में स्वयं को ढूंढ़ रहा हो। नीमा हैरान थी, आज यह उसके बच्चे को क्या हो गया है? क्षण भर में तमाम तरह की कुशंकाओं ने उसके हृदय को मथ कर रख दिया था। अंततः असह्य हो गये मौन को नीमा ने ही भंग किया था, "क्या बात है कबीर, ऐसे क्यों देख रहे हो?"

जवाब में कबीर ने कांपती आवाज में पूछा था, "अम्मा, क्या मैं तुम्हारा बेटा नहीं?"

सुनकर नीमा को लगा था मानो भूचाल आ गया हो और उसके आसपास की धरती डोल रही हो। क्षण भर के लिए सन्न रह गयी थी वह। हाय! आज तक वह जिस सवाल से भागती रही कबीर उसी को लेकर उसके सामने बैठा था। उसने कबीर से ही प्रतिप्रश्न किया था, "कबीर, क्या अपनी कोख से जन्म देने वाली ही मां होती है? कृष्ण को पालने वाली यशोदा उसकी मां नहीं थी? यदि मेरे ही मुंह से सुनना चाहता है तो सुन, मैं ही तेरी मां हूं। मैंने तुझे अपनी गोदी में पालकर छोटे से बड़ा किया है। जब तू रोता था मैं ही लोरी सुनाकर तुझे सुलाती थी। जब से तू आया है मैं तेरी ही नींद सोती और जागती रही। तुझे देख मैं भूल गयी थी कबीर कि मैं बेऔलाद हूं। क्या कुछ और जानना चाहते हो तुम?" नीमा का गला भर आया था।

"नहीं अम्मा !" कबीर ने नीमा की गोद में अपना सिर रख दिया था। और नीमा उसे अपनी बाहों में भरकर रोने लगी थी। कुछ ही पलों में दोनों अपने सारे अतीत को जी गये थे। आंसुओं के साथ आज नीमा के हृदय का बोझ हलका हो गया था। वह जानती थी सच्चाई जानकर कबीर उसे और सम्मान देगा।

और यही हुआ था। कबीर का मन नीमा के प्रति अगाध श्रद्धा से भर गया था। उसकी बाहों से अलग होकर वह बोला, "अम्मा, भूख लगी है।" सुनकर नीमा तुरंत उठ खड़ी हुई थी। कबीर के बैठते ही उसने भोजन परोस दिया था। इस वक्त उन दोनों के चेहरों पर एक असीम संतोष का भाव छाया हुआ था।

❑

बात उन दिनों की है जब महात्मा गांधी इलाहाबाद आये थे और आनंद भवन में ठहरे हुए थे। प्रातःकाल हाथ-मुंह धो रहे थे। पास में जवाहरलाल नेहरू बैठे थे। बातचीत चल रही थी। गांधी जी के लोटे का पानी समाप्त हो गया। वे बोले-ओह! बात ही बात में पानी समाप्त हो गया और अभी कुल्ला करना शेष है। नेहरू जी ने कहा-बापू जी! आप क्या कह रहे हैं? आप जितना चाहेंगे उतना पानी और आ जायेगा। यह गंगा-यमुना का नगर है। यहां पानी की कमी कैसी? बापू बोले-जवाहर! तुम ठीक कहते हो कि यह गंगा-यमुना का शहर है, किन्तु इस पर अकेले मेरा ही अधिकार नहीं है, लाखों-करोड़ों लोगों का इस पर अधिकार है। मैं फिजूल पानी खर्च करूं यह अनुचित है।

प्रस्तुति-रमेश दास

प्रवचन

आध्यात्मिक उन्नति और ध्यान

(परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा, श्री कबीर संस्थान, नवापारा, राजिम, रायपुर में दिनांक 6 अगस्त, 2006 को दिया गया प्रवचन। प्रस्तुति—रामकेश्वर जी)

पूजनीय संत समाज, प्रिय सज्जनो तथा देवियो!

एकाग्रता, ध्यान और समाधि आध्यात्मिक उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। एकाग्रता का अर्थ है एक लक्ष्य में मन का ठहराना और ध्यान-समाधि का अर्थ है कुछ लक्ष्य न रखना। किसी एक आधारबिन्दु पर मन को बराबर केन्द्रित करना एकाग्रता का अभ्यास है। एकाग्र=एक+अग्र अर्थात आगे एक लक्ष्य।

साधक बैठा और संकल्प लिया कि कुछ न सोचूंगा। कोई ख्याल आया उसको उसने छोड़ दिया, उसमें अपनी सत्ता नहीं दिया तो धीरे-धीरे मन सरल, शांत और सहज हो जाता है और जब संकल्प आना बन्द हो जाता है तब यह ध्यान-समाधि की दशा आती है। उसके बाद इसका फल होना चाहिए कि खाते-पीते, काम-धन्धा करते, लेटे-बैठे सब समय मन का सरल और सहज रहना, कहीं न उलझना। कोई ध्यानी है और उलझा रहता है, क्रोध करता है, काम-लोलुप है, मोही है और कलहप्रिय है तो ध्यान नहीं हुआ।

एकाग्रता और ध्यानाभ्यास के बाद मन मक्खन बन जाना चाहिए। मक्खन में कोई किरकिरी नहीं होती है क्योंकि दूध की मलाई से मक्खन बनता है। उसमें किरकिरी होने की कोई सम्भावना ही नहीं है। उसी प्रकार एकाग्र और समाधिलीन मन निर्ग्रंथ होता है और निर्ग्रंथ मन में तकलीफ नहीं होती।

ध्यान का मतलब है दुख से छूटना। सब काम दुख से छूटने के लिए किया जाता है। लेकिन बुद्धि जब उलटी हो जाती है तब ऐसा काम किया जाता है जिससे दुख बढ़े। मनुष्य का मन जब काम-वासना में व्याकुल होता है तब उसे बड़ा दुख होता है। वह उस दुख को दूर करने के लिए स्थूल कामभोग करता है, लेकिन दुख दूर नहीं होता। उससे तो वासना और बलवती होती है। पीछे फिर बेचैनी बढ़ती है और साथ-साथ जब वह क्रिया करता है तब शरीर क्षीण करता है, मन क्षीण करता है और पश्चाताप करता है। ज्यादा करता है तो व्याधि भी बुलाता है। सब दुख होता है लेकिन दुख की निवृत्ति के लिए ही वह भूलवश ऐसा करता है। काम-भोग की क्रिया प्राकृतिक ढंग से केवल संतान के लिए है, विलास के लिए नहीं।

जब क्रोध आता है, मन होता है कि गाली दूं और मारूं। बीच में कोई विघ्न करता है तो उसी पर क्रोध आ जाता है। कारण है कि क्रोध का दुख रहता है और उस दुख को मिटाने के लिए मारने और गाली देने का मन कहता है लेकिन उससे दुख बढ़ता है। मारोगे तो स्वयं मारे जाओगे। गाली दोगे तो स्वयं गाली पाओगे, कलह बढ़ेगा, फायदा कुछ नहीं होगा।

दुख दूर करने का काम तो सब करते हैं। राजनीति में जब बड़ी तृष्णा होती है कि हम ही गद्दी पर आयें और हमारे अलावा और कोई न आने पाये तब राजनेता लोग हत्या ही नहीं, सामूहिक हत्या भी करवाते हैं तथा और भी बड़ा-बड़ा षड्यंत्र करते हैं।

पहले तो हजारों लोगों को मारा-काटा जाता था। एक उद्दण्ड जोरदार बदमाश सेना लेकर उठता था और हजारों को कटवाकर गद्दी पर बैठता था। तब उसका नाम होता था—'महाराजाधिराज।' रजवाड़ों में ज्यादातर तो दुर्जन ही रहे हैं।

इसी प्रकार नेताओं में भी दुर्जनों की संख्या खूब है। जिन्हें न तो जनतंत्र के नियम से मतलब है और न गणतंत्र के नियम से मतलब है। उन्हें मतलब है कुर्सी पर रहने से और इसी के लिए वे सारा पाप करते हैं। वे भी सुख के लिए करते हैं लेकिन वह दुख का कारण होता है।

महारानी कैकेयी ने सुख के लिए ही महाराज दशरथ से कहा कि भरत का राज्य हो और राम का वनवास हो लेकिन आप जानते हैं, उनको सुख कहां हुआ, दुख ही हुआ। अपने जीवन के अंत तक कैकेयी जलती रही।

सीता जी ने सुख के लिए राम से सोने के मृग को लाने को कहा। सोने का मृग उनको बड़ा अच्छा लगा। महाराज राम भी उसी में सहायक हो गये, सहमत हो गये। लक्ष्मण जी ने रोका और कहा कि भैया, सोने का मृग नहीं होता है। लगता है कि इसमें कुछ धोखा है, लेकिन राम ने ध्यान नहीं दिया; तो उनको सुख नहीं हुआ। राम और सीता दोनों दुखी हुए।

उस मृग के तुरन्त पीछे ही राम वन-वन रोये और सीता रावण के कैदखाने में पड़ी रोती रहीं। फिर महा कलह हुआ। जैसा माना जाता है कि राम और रावण में युद्ध हुआ अगर वह सही है तो वह सब कितना दुखद हुआ।

चाहे पिण्ड में हो चाहे ब्रह्माण्ड में, मतलब है कि चाहे घर में हो चाहे राष्ट्र में, सुख के लिए ही लोग सब कुछ करते हैं लेकिन समझ नहीं पाते हैं कि सुख कहां है! सुख है अपने को मारने में, दूसरे को मारने में सुख नहीं है। दूसरे को गरियाने में सुख नहीं है। अपनी गलतियों को देखकर निकालने में सुख है।

इन्द्रियों को उत्तेजित करने में सुख नहीं है। उत्तेजना में सुख की कल्पना तो होगी लेकिन दुख बढ़ेगा। उसमें वासना बढ़ेगी और चित्त सदैव अभाव की भट्टी में जलेगा।

लोग इन्द्रियों को सुख के लिए ही उत्तेजित करते हैं लेकिन उसमें सुख नहीं, दुख ही होता है। उसमें दुख बढ़ता है। सुख है अपने को मारने में और अपने को मारने का मतलब है अपनी बुराइयों को मारना, अपनी कमजोरियों को जीतना। अपनी कमजोरियों को जीतने में सुख है।

हम कुछ समय जो ध्यान करते हैं उसका व्यापक रूप हो जाना चाहिए। व्यापक रूप तब होगा जब 'ऊठत बैठत कबहुँ न छूटे, ऐसी तारी लागी।'

साहेब ने एक भजन गाया है जो ध्यान और समाधि के स्वरूप को समझने के लिए बहुत ही सटीक है। वह भजन है—

संतो सहज समाधि भली ।
गुरु प्रताप भयो जा दिन ते, सुरति न अंत चली ॥टेक॥
जहँ जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कुछ करौं सो पूजा ।
जब सोवौं तब करौं दंडवत, भाव मिटाओं दूजा ॥ 1 ॥
आंख न मूंदों कान न रूंधों, काया कष्ट न धारौं ।
खुले नैन हंसि हंसि पहिचानौं, सुन्दर रूप निहारौं ॥ 2 ॥
शब्द निरंतर मनवा राता, मलिन वासना त्यागी ।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटे, ऐसी तारी लागी ॥ 3 ॥
कहत कबीर सहज यह रहनी, सो परगट करि गाई ।
सुख दुख से कोइ परे परम पद, सो पद है सुखदाई ॥ 4 ॥

'ऊठत बैठत कबहुँ न छूटे, ऐसी तारी लागी' ऐसा ध्यान लगा कि उठते-बैठते कभी छुटता नहीं है। यह कौन-सा ध्यान है? यह ध्यान है आत्मसंयम। जितने ध्यानार्थी यहां आये हैं उनको चाहिए कि वे अपने-अपने घर में रोज एक बार, दो बार ध्यान जरूर किया करें। और जो ध्यान में नहीं आये हैं उनको भी चाहिए कि वे भी करें। रोज ध्यान करोगे तो इसका प्रभाव मन पर बड़ा अच्छा होगा। विवेक में ढल जाना ही ध्यान का फल है। हम रोज-रोज अलग बैठकर जो ध्यान करते हैं वह विवेक में ढल जाये और उठते-बैठते, चलते-फिरते हर समय मन निर्ग्रंथ रहे।

गोरखनाथ जी महाराज ने कहा है 'हंसिबा खेलिबा धरिबा ध्यान।' योगिराज गोरखनाथ जी कहते हैं कि हंसेंगे, खेलेंगे और ध्यान धरेंगे। हंसना-खेलना एक लाक्षणिक कथन है। हम खेत में हल जोतेंगे, खाद फेकेंगे, नाली साफ करेंगे, धान काटेंगे, उसकी मिंजाई और ओसाई करेंगे। हम पुस्तक पढ़ेंगे या आफिस में काम करेंगे। हम कारखाने में काम करेंगे और ध्यान करेंगे। हम चाहे सड़क पर रहेंगे चाहे रास्ते में रहेंगे लेकिन ध्यान करेंगे। कहने का मतलब है कि सब समय ध्यान करेंगे।

शय्याऽऽसनस्थोऽथ पथि व्रजन् वा स्वस्थः परिक्षीणवितर्कजालः।
संसारबीजक्षयमीक्षमाणः स्यान्नित्यमुक्तोऽमृतभोगभागी॥

आदमी चाहे शैया पर लेटा हो, आसन पर या कुर्सी पर बैठा हो। अथवा रास्ते में चलता हो। स्वस्थ हो। स्व+स्थ=अपने में स्थित हो, विचलित न हो। कहीं लालच-लोभ और क्रोध में न पड़ा हो।

अगर हम कहीं ललचा गये तो हमारी मिट्टी पलीद हो गयी। किसी का मकान देखे और ललचा गये कि ऐसा ही मकान मेरे हो, तो मेरी इज्जत चली गयी। मकान-वकान तो पता नहीं कहां जायेगा। जिसमें हम ललचाते हैं वह बहुत क्षणिक होता है। सबको अपना मकान छोड़-छोड़कर जाना है। जो कहीं नहीं ललचाता है वही स्वस्थ है। अगर हम कहीं किसी पर क्रुद्ध हो गये तो अपनी मर्यादा से गिर गये।

ऋषि कहते हैं कि वितर्कजाल न रहे। वह परिक्षीण हो। वितर्कजाल का अर्थ है मन का उद्वेग। किसी के लिए ईर्ष्या, किसी के लिए द्वेष, किसी के लिए कलह। कितने लोग मन ही मन बातें करते रहते हैं। यह वितर्कजाल है, मन का उद्वेग है। यह परिक्षीण हो। पूरा क्षीण हो। मन में कोई उद्वेग न उठता हो, मन प्रशांत हो।

'संसार बीज क्षयम् ईक्षमाणः' संसार-बीज मोह है। उसको क्षय की दृष्टि से देखता हुआ यानी मोह को सदैव नष्ट करने की दृष्टि से देखता हुआ रहे।

सदैव ध्यान रखे कि कहीं मोह न लगने पाये। जब तक जीवन है तब तक अनुकूल प्राणी, पदार्थ और परिस्थिति मिलते हैं जिनमें मोह होने का अवसर रहता है और प्रतिकूल भी मिलते हैं जिनमें द्वेष होने का अवसर रहता है। यह न हो। संसार बीज को क्षीण करने की दृष्टि से देखता रहे। वह नित्यमुक्त है और अमृत भोग का भागी है।

साधक बिस्तर पर लेटा हो, आसन पर बैठा हो। रास्ते में चलता हो, हर समय शांत हो। उसके मन का उद्वेग पूरा कटा हो और मोह को सदैव नष्ट करने की दृष्टि से देखता हो। ऐसा साधक सदैव अमृत में जीता है और सदैव मुक्त है। मोह तो उसका पहले ही कट गया है लेकिन जब तक शरीर है मोह बनने न पाये। साहेब भी यही कहते हैं "ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी तारी लागी।" उठते-बैठते, अपना सारा काम-धाम करते निरंतर मन की निर्मलता बनी रहे और मन में संसार की नश्वरता का भान होता रहे।

अवध क्षेत्र में कहते हैं 'बैठे लेटे खड़े उतान, कहैं कबीर हम एक समान।' गंवई लोग भी कबीर साहेब की कहावत कह-कहकर खूब रस लेते रहते हैं। हम चाहे बैठे हों, चाहे लेटे हों, चाहे खड़े हों, चाहे उताने हों, चाहे करवट हों, चाहे जब हो, हम सब समय एक समान हैं। एक समान रहना बड़ी बात है। साहेब ने कहा है—

तन राता मन जात है, मन राता तन जाय।
तन मन एकै होय रहै, तब हंस कबीर कहाय॥

(बी. र. सा. 51)

जहां शरीर आसक्त है वहां मन जाता है। शराबी का मन शराब की दुकान पर जाता है। इन्द्रियां जिस विषय में लम्पट हैं वहां मन जायेगा। और मन आसक्त है तो तन जायेगा। शराब की दुकान पर उसका शरीर जाकर खड़ा हो जायेगा, लेकिन 'तन मन एकै होय रहे' तन और मन दोनों को जो एकाग्र, संयत कर लेता है वह 'हंस कबीर कहाय' कबीर कहते हैं कि वह हंस कहलाता है। नीर-क्षीर अलग कर दिया। नीर को उसने छोड़ दिया और क्षीर ले लिया। आत्मा और अनात्मा का विवेक कर दिया। अनात्मा का त्यागकर आत्मा में स्थित हो गया। साहेब कहते हैं कि वह हंस है।

सब लोग हंस हों। अपने हंसत्व को आप लोग समझें। सब हंस हैं। साहेब सभी मनुष्यों को हंस ही मानते हैं—

हौं जाना कुल हंस हो, ताते कीन्हा संग।
जो जानत बगु बावरा, छुवै न देतेउँ अंग॥

(बी. सा. 262)

साहेब कहते हैं कि मैंने जाना कि तुम हंस कुल के हो। मनुष्य शरीर पाये हो और चेतन हो इसलिए तुम हंस हो। इसीलिए तुम्हें अपने साथ में रख लिया। अगर

तुम्हें पागल बगुला समझता तो अपने पास भी न फटकने देता। दो ढंग से इस साखी का अर्थ होता है।

एक ढंग से अर्थ है कि साहेब कहते हैं कि मैं जानता हूं कि तुम हंस हो, बगुला नहीं हो। इसलिए तुम्हें मैं अपने साथ लिया हूं। सब जीव स्वरूप से हंस हैं।

दूसरे ढंग से अर्थ है कि हंस होते हुए भी आचरण बिगाड़कर बगुले भी बने रहते हैं और शायद साहेब कहीं धोखा खा गये हों। कोई उनके पास आया हो और निवेदन किया हो कि साहेब मैं आपकी शरण चाहता हूं और शिष्य होना चाहता हूं।

दया करके साहेब ने उसको अपना शिष्य बनाया हो लेकिन पीछे वह गड़बड़ाया हो। इसलिए साहेब ने कहा कि अरे, मैं तो जाना कि तुम हंस हो इसलिए अपने साथ तुम्हें लगा लिया लेकिन तुम तो बगुले ठहरे। मैं अगर जान लेता कि तुम बगुला हो तो अपने पास बैठने भी न देता।

बड़े-बड़े गुरु धोखा खाये हैं। बुद्ध, महावीर, कबीर, शंकर कोई भी रहा हो, धोखा खाया है। उनके पास रहनेवाले कितने लोग शिष्य बनकर गड़बड़ किये हैं। किसी को 'अच्छा है कि बुरा' यह जानने के लिए गुरु लोगों के पास नापने का कोई यंत्र थोड़े है। कोई हमारे पास शिष्य बनने के लिए आये तो हम कैसे जानेंगे कि यह अच्छा है कि खराब।

डॉक्टर लोगों के पास थर्मामीटर होता है जिससे वे शरीर का तापक्रम नापते हैं। जब कोई डॉक्टर के पास आता है और कहता है कि मुझे बुखार है तो डॉक्टर फौरन उसके मुख में थर्मामीटर डालता है और जान लेता है कि उसको बुखार है या नहीं और है तो कितना है। उस प्रकार हम लोगों के पास कोई यंत्र नहीं है जिससे हम लोग यह जान लें कि यह सदा के लिए ठीक रहेगा। जो गड़बड़ हो जाते हैं वे अपना नुकसान करते हैं।

संसार में मृत्यु देह की होती है और साधुओं में मृत्यु पतन को कहा जाता है। जो पतित हो गया और अपनी रहनी में नहीं रहा, वह मर गया और ऐसा होता है। साहेब की साखी का पहलेवाला अर्थ सार्वभौमिक है। साहेब कहते हैं कि मैं मानता हूं कि तुम हंस हो और केवल मानता ही नहीं हूं, तुम हंस हो ही, इसलिए तुम्हें साथ में लिया हूं।

साहेब कहते हैं कि 'ऊठत-बैठत कबहुँ न छूटे, ऐसी तारी लागी' कहीं भी रहो, कोई भी काम करो, कोई भी धन्धा करो, अपने मन को कोमल रखो, वाणी को कोमल रखो और अपने कर्म को निर्मल रखो फिर कोई आंच नहीं है। दुनिया के हानि-लाभ की चिंता बिलकुल न करो। काम करो, सेवा करो, जीवनभर भोजन मिलेगा। पहनने को कपड़े मिलेंगे, सोने की जगह मिलेगी। साधना करो और मुक्त हो जाओ। जो चारों तरफ फैला है और जिसको माल-टाल मानते हो, वह सब धूल-माटी है, रेत है। रेत ही अनेक विचित्र रूपों में खड़ा है और सब भहराकर गिर जायेगा और फिर बनता रहेगा।

साँच बराबर तप नहीं

रचयिता—हीरेन्द्र दास

सद्गुरु ज्ञान को, तू मिटाना नहीं।
सद्गुरु ज्ञान दिल से, हटाना नहीं ।।

ज्ञान है पारख का, ध्यान स्वरूप का।
अज्ञानियों के संग में, कभी भुलाना नहीं॥

सत्य के राह पर चलकर, चाहे मरना पड़े।
असत से कभी हाथ, मिलाना नहीं॥

साँच बराबर तप कहीं, जगत में दूजा नहीं।
गुरु कबीर गांधी, अभिलाष ने कही॥

जड़ को जड़ समझो, नित चेतन को पूजो।
गुरु संतों का आशीष, कहीं चूकना नहीं॥

वह भक्ति है कैसी, भजन है वह कैसा।
सद्गुरु ज्ञान के, अनुकूल जो है नहीं॥

कब्र समाधि पूजना नहीं, जड़ में रिझना नहीं।
सद्गुरु ने हमको ये बातें, दीक्षा में कही॥

भक्ति ज्ञान वैराग्य से, मन को सजाते रहो।
साथ में तो हीरेन्द्र, कभी कुछ जाता नहीं॥